।। श्री अक्षरातीताय नमः ।।

सृष्टि विज्ञान प्रबोध

(क्षर, अक्षर एवं अक्षरातीत निरूपण)

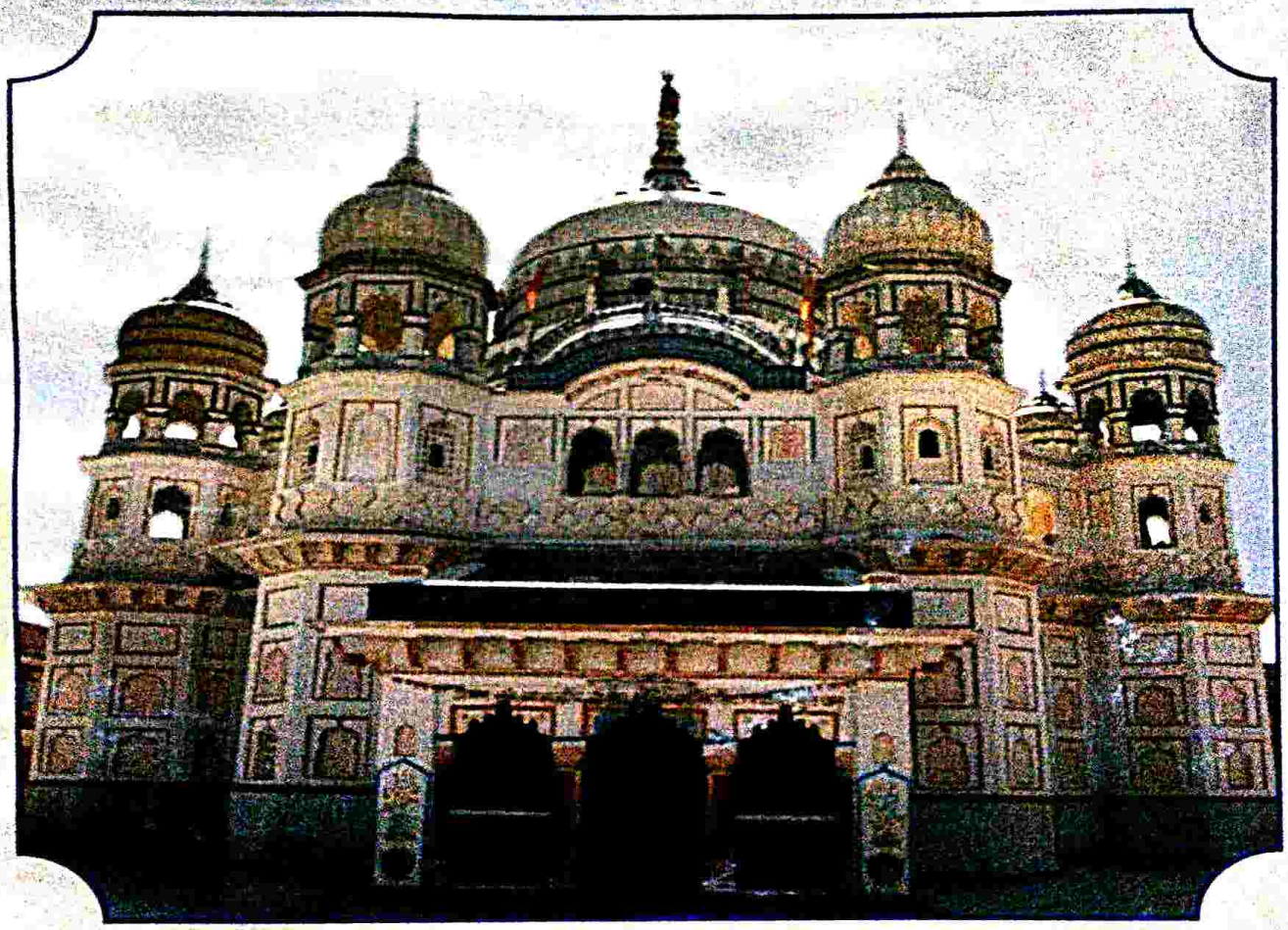

प्रकाशक :

श्री प्राणनाथ अकादमी

धाम, पन्ना (म.प्र.) मो. 9425420525

।। श्री अक्षरातीताय नमः ।।

सृष्टि विज्ञान प्रबोध

(क्षर, अक्षर एवं अक्षरातीत निरूपण)

प्रकाशक :

श्री प्राणनाथ अकादमी

धाम, पन्ना (म. प्र.) मो. 9425420525

- संयोजन :
  पारसमणि शास्त्री
  धाम, पन्ना (म. प्र.)

- प्रकाशक :
  श्री प्राणनाथ अकादमी
  धाम, पन्ना (म. प्र.)

- आवृत्ति :
  प्रथम आवृत्ति : 1000 प्रतियाँ

- न्यौछावर :
  30/- तीस रुपये मात्र

- मुद्रक :
  पद्मावती टेक्नो ऑफसेट
  धाम, पन्ना (म. प्र.)

- प्रकाशन तिथि :
  श्री बाईजूराज 375वाँ प्रकटन महोत्सव,
  अप्रेल 2014

- पुस्तक प्राप्ति स्थान :
  श्री प्राणनाथ अकादमी
  धाम, पन्ना (म. प्र.) 9425420525

स्वकथ्य

श्री पूर्णब्रह्म अक्षरातीत परमात्मा श्री राजजी की असीम कृपासे 'सृष्टि विज्ञान प्रबोध' नामक पुस्तिका का प्रकाशन सुन्दरसाथ की बड़ी माँग को देखते हुये सरल व सुबोध भाषा में किया जा रहा है ।

पुस्तिका में पाताल से परमधाम तक शास्त्रोक्त मतानुसार वर्णन किया गया है । यह पुस्तिका कोई कल्पित कृति नहीं है, अपितु शास्त्रसम्मत एवं श्री 5 पद्मावतीपुरी धाम के प्राचीन दस्तावेजों के आधार पर लिखी गई है । साथ ही कानपुर निवासी सद्धर्म सिद्धान्त वागीश ब्रह्मलीन श्रीकृष्णदत्त शास्त्री द्वारा लिखित शास्त्र–प्रमाणयुक्त 'श्रीविराटपटदर्शन' नामक ग्रंथ का विधिवत् अध्ययन के फलस्वरूप सार रूप में यह पुस्तक तैयार की गई है । इसके अतिरिक्त प्रणामी धर्म के परम विद्वान गुरुजी श्री मंगलदासजी महाराज द्वारा नेपाली भाषा में लिखित अक्षरातीत परिचय नामक ग्रंथ का का भी अवलोकन किया गया । प्रणामी धर्म के प्रकांड विद्वान गोस्वामी श्रीसदानंदजी की 'सृष्टि विज्ञान वाटिका' नामक ग्रंथ, गुजराती भाषा में श्रीकृष्ण प्रियाचार्यजी महाराज द्वारा तैयार किया गया 'श्रीविराट निरूपण' नामक ग्रंथ तथा श्री रणछोड़ वीरजी, बाँकुड़ा वालों द्वारा प्रकाशित 'सृष्टि विज्ञान वर्णन' नामक पुस्तिका से भी काफी जानकारियाँ ली गई हैं ।

यह पुस्तिका उपरोक्त सभी ग्रंथों की सहायता से, सरल भाषा में तैयार की गई है, ताकि सुन्दरसाथ व अन्य जन इस गूढ़ रहस्यात्मक ज्ञान सरलता से प्राप्त कर सकें ।

विराट का सम्पूर्ण और शास्त्रसम्मत ज्ञान प्रणामी सम्प्रदाय की ही देन है । इसका विधिवत ज्ञान अन्य संप्रदाय अथवा धर्मग्रंथों में उपलब्ध नहीं है । शास्त्रों में भी जो वर्णन मिलता है, वह अपर्याप्त और अधूरा है ।

अध्यात्मज्ञान की जिज्ञासा सभी ज्ञानपिपासुओं को होती है परन्तु वास्तविक अध्यात्म ज्ञान क्या है, और उसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है यह विचार बिरले ही करते हैं । महामति श्री प्राणनाथजी ने उक्त ज्ञान का दिग्दर्शन श्री मुखवाणी में भलीभाँति किया है, जिससे परम धाम की लीला एवं वहाँ के रहस्यों को जाना जा सकता है । प्रेम लक्षणा भक्ति द्वारा उस परमपद को प्राप्त किया जा सकता है ।

पूर्णब्रह्म परमात्मा, जो त्रिगुणातीत, प्रकृति पुरुष से भी परे और अविनाशी है, वे कौन हैं, जगत और उस परमपद के बीच में क्या अन्तर है, उनकी क्या महत्ता है आदि का ज्ञान इस पुस्तिका द्वारा प्राप्त किया जा सकता है ।

इस तत्त्व को सरलता से समझने के हेतु महापुरुषों ने क्षर–अक्षर–अक्षरातीत के विषय में नक्शा भी तैयार किया है । श्रीजी के समय के बने हुये ऐसे विराट नक्शे आज भी पन्ना धाम में विद्यमान हैं । इस पुस्तिका के साथ यदि उन नक्शों की सहायता ली जाये तो समझने में सुविधा होगी । आजकल छपे हुये नक्शे भी आसानी से मिल जाते हैं ।

अतः आशा है कि लम्बे समय से सुन्दरसाथ की माँग को देखते हुये प्रकाशित इस पुस्तिका से पाठक लाभान्वित होंगे ।

–पारसमणि शास्त्री

अनुक्रमणिका

1	विषय प्रवेश-	7
2	क्षर पुरुष अंतर्गत चौदह लोक	
3	सात पाताल वर्णन	9
	पाताल	9
	रसातल	10
	महातल	10
	तलातल	11
	सुतल	11
	वितल	11
	अतल	12
4	सात लोकों का वर्णन	13
	भूलोक	13
	भुवर्लोक	18
	स्वर्गलोक	19
	महर्लोक	21
	जनलोक	22
	तपलोक	22
	सत्यलोक : बैकुण्ठ	23
5	नर्क लोक	26
6	अष्टावरण:	
	विराट की प्रथम समष्टि	28
	पृथ्वी	28
	जल	28
	अग्नि	29
	वायु	29
	आकाश	29
	मन	29
	बुद्धि	30
	अहंकार	30
7	ज्योति स्वरूप (ॐकार)	31
8	गायत्री शक्ति	33
9	महतत्त्व :	
10	आदिनारायण का सूक्ष्मतम स्वरूप	
	दूसरी अन्तःसमष्टि	34
11	आदिनारायण का कारण स्वरूप	
	इच्छाशक्ति, सात शून्य	
	तीसरी अन्तःसमष्टि	35
12	आदिनारायण का महाकारण स्वरूप	
	क्षर पुरुष आदिनारायण महाकरण	
	चौथी अन्तः समष्टि	34
13	महाशून्य समष्टि	39
14	चार प्रकार के प्रलय	42
	नित्य प्रलय	42
	नैमित्तिक प्रलय	43
	प्राकृतिक प्रलय	43
	आत्यंतिक महाप्रलय	44
15	अक्षरब्रह्म अंतर्गत अव्याकृत ब्रह्म	
	अक्षर ब्रह्म की विभूति-	
	सूक्ष्म महा समष्टि	45
16	शुद्ध प्रणव	46
17	अज्ञानमय प्रणव	47
18	ज्ञानशक्ति गायत्री	48
19	अव्याकृत के सूक्ष्मपाद में स्थित	
20	काल निरंजन शक्ति	50

7	अव्याकृत के कारण स्थित सात महाशून्य	52
8	अव्याकृत का महाकारण (सबलिक का स्थूल)	53
9	शुद्ध स्थूल-	54
10	शुद्ध सूक्ष्म-	54
11	नित्य बैकुंठ-	55
12	सतलोक-	55
13	श्वेतद्वीप-	55
14	पुष्करद्वीप-	55
15	शुद्ध कारण-	55
16	शुद्ध कारण-	56
17	शुद्ध महाकारण	57
18	अव्याकृत का महाकारण	58
19	सबलिक ब्रह्मः चिदानन्द लहरी	
20	सबलिक ब्रह्म का	
21	सूक्ष्मपाद-कारण महासमष्टि	59
22	सबलिक ब्रह्म का कारण नित्यगोलोक धाम (ब्रजलीला)	60
23	सबलिक ब्रह्म का महाकारण (महारास)	61
24	सबलिक ब्रह्म का निर्मल चेतन केवल ब्रह्म	63
25	(ब्रह्मानंद लीला का अंश)	65
26	सत्स्वरूप (अक्षर ब्रह्म के मन का स्वरूप)	67
27	कूटस्थ अक्षरब्रह्म (नित्य महासमष्टि)	71
28	श्री अक्षरातीत पूर्णब्रह्म श्री राजजी का दिव्य परमधाम	75
29	पूर्णब्रह्म की महत्ता	77
	परमधाम का संक्षिप्त वर्णन	79
30	रंगमहल	80
31	पहली भोम	81
32	दूसरी भोम	82
33	तीसरी भोम	82
34	चौथी भोम	83
35	पाँचवीं भोम	83
36	छठी भोम	83
37	सातवीं भोम	83
38	आठवीं भोम	83
39	नवमीं भोम	84
40	दसमीं भोम	84
41	अक्षरातीत पूर्णब्रह्म	
42	सच्चिदानंद अद्वैत स्वरूप	
43	श्री राजजी महाराज	86

।। श्री प्राणनाथाय नमः ।।

सृष्टि विज्ञान प्रबोध

(क्षर, अक्षर एवं अक्षरातीत निरूपण)

विषय प्रवेश

इस संसार की उत्पत्ति के पूर्व न असत्य था, और न सत्य ही था । परमाणु, आकाश, पांच तत्त्व आदि नहीं थे । न मृत्यु थी, न अमृत था, स्वर्ग, नर्क, निराकार, साकार जड़ प्रकृति इत्यादि कुछ भी नहीं था । उस समय केवल एक अखण्ड मण्डलाकार परमज्योतिर्मय, अक्षरातीत पूर्णब्रह्म परमात्मा थे ।

उन्होंने अपनी ब्रह्मांगनाओं को अक्षर ब्रह्म का मायावी खेल दिखाने तथा अक्षर ब्रह्म को अपने गुह्यात् गुह्य ब्रह्मानंद का अनुभव कराने के लिये जगत की रचना करने की इच्छा अक्षर ब्रह्म के दिल में उत्पन्न करा दी ।

जो विश्व ब्रह्माण्ड आज हमारे समक्ष अत्यंत विस्तृत रूप में दिखाई दे रहा है, उसके नाम वैदिक साहित्य में विविध प्रकार से दिये गये हैं । इसे विश्व, ब्रह्मांड, विराट, जगत, संसार, दुनिया, भवसागर इत्यादि नामों से भी पुकारा जाता है ।

इस विश्व की उत्पत्ति अक्षरब्रह्म के मन से हुई है, अतः यह मायावी खेल है । उसी माया के अधीश्वर को क्षर पुरुष कहते हैं; इस तरह शास्त्रों में क्षर, अक्षर तथा अक्षरातीत तीन पुरुषों का वर्णन है । उनमें अक्षर ब्रह्म तथा अक्षरातीत पूर्णब्रह्म अविनाशी हैं और क्षर पुरुष नाशवान है । श्रीमद्भगवत गीता के पन्द्रहवें अध्याय में इस संबंध में जानकारी है । माया से परे पूर्णब्रह्म परमात्मा को जानने के लिये उसकी माया तथा माया से उत्पन्न जगत के कर्ता की व्यवस्था समझना आवश्यक है । इसके बिना परमात्मा का स्वरूप और माहात्म्य पूर्ण रूप से जाना नहीं जा सकता ।

यहाँ पर तीनों पुरुषों का विस्तार से वर्णन किया गया है। सर्वप्रथम माया शक्ति से उत्पन्न चौदह लोकों का वर्णन, जिसमें पाताल से लेकर आदि नारायण तथा महाशून्य तक का सोपानवत् वर्णन किया गया है । तत्पश्चात अविनाशी अक्षर ब्रह्म तथा अक्षरातीत धामधनी के परमधाम का दिग्दर्शन है ।

पाताल से वैकुण्ठ तक भिन्न-भिन्न नाम के चौदह लोक हैं जिनका सामूहिक नाम विराट है । शास्त्रों में इस विराट के पुरुष रूप की कल्पना की गई है और चौदह लोकों के इसके यथायोग्य भिन्न-भिन्न अंगों में वर्णित है । यथा- विराट पुरुष के कमर में अतल, जांघों में वितल, घुटनों में सुतल, पिंडुलियों में तलातल, गुल्फा (एड़ी के ऊपर के भाग) में महातल, पैरों में रसातल और पाँव के तलवे में पाताल है । इसी प्रकार उदर में भूलोक, नाभि में भुवर्लोक, हृदय में स्वर्गलोक, छाती में महर्लोक, कंठ में जनलोक, ओष्ठों में

तपलोक तथा मस्तक में सत्यलोक स्थित है । इन चौदह लोकों के मध्य के लोक को मृत्युलोक अथवा भूलोक कहते हैं । इससे नीचे सात पाताल और ऊपर मृत्युलोक सहित सात लोक स्थित हैं ।

इस प्रकार ये चौदह लोक एक के ऊपर एक क्रमशः स्थित हैं । भूलोक से नीचे जो सात लोक हैं उन्हें बिल स्वर्ग भी कहते हैं । सातों पातालों में दैत्य, दानव तथा नागों (सर्पों) की बस्तियाँ हैं ।

क्षर पुरुष अंतर्गत चौदह लोक

सात पाताल वर्णन

(1) पाताल–

यह सबसे नीचे का लोक है । इसमें के सबसे नीचे के भाग में मोहजल का अंशरूप पानी का एक विस्तृत भाग है ।

ब्रह्मांड के गर्भ में होने के कारण इसको गर्भोदक अथवा मोह तत्त्व भी कहा जाता है जिससे हिरण्यगर्भ, महाविष्णु आदि पैदा हुए हैं, उसी मोह जल के अंशरूप होने पर इसे गर्भोदक समुद्र कहा जाता है । इस समुद्र में अत्यधिक लम्बे चौड़े विस्तार वाला एक कछुआ है जो अपनी पीठ पर चौदह लोकों का सारा भार धारण किये हुए सर्पों के राजा शेषनाग कमलाकार आसन में विराजमान हैं ।

शेषनाग की शैय्या कल्पित करके उस पर श्री महाविष्णु के सम्पर्क नामक व्यूह (अहंकार) का स्वरूप श्री नारायण जी

शयन करते हैं, उन्हें शेषनारायण भी कहते हैं। लक्ष्मीजी उनकी पादसेवा कर रही हैं। शेषनारायण की नाभि प्रदेश से एक कमलनाल निकल कर सुदूर ऊपर को जा निकला है, उसी में से त्रिदेवों- ब्रह्मा, विष्णु और शंकर की क्रमशः उत्पत्ति हुई है।

नारायणजी की, सोऽहं-सोऽहं-श्वास-प्रश्वास से चार वेद-ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अर्थर्ववेद स्थूलरूप से प्रगट हुए हैं।

श्री नारायणजी से तीस सहस्त्र योजन ऊपर सर्पों की बस्ती है। यह स्थान सर्पों के अनुकूल अनेक प्रकार के भोग-विलासपूर्ण पदार्थों से भरा हुआ है। यहाँ पर चन्द्र सूर्यादिका प्रकाश नहीं है, अपितु मणियों के स्वतः प्रकाश से प्रकाशित है। इसी स्थान पर उत्तरोत्तर भयंकर दुःखप्रद नरकों के चौरासी कुंड हैं। जो मनुष्य निषिद्ध कर्म करता है, उसे उन्हीं नरकों में गिरकर दण्ड स्वरूप यातना भोगना पड़ता है।

2. रसातल-

यह लोक पाताल से दश सहस्त्र योजन ऊपर है। यह सब प्रकार के भोग-विलासादि अनुकूल पदार्थों से परिपूर्ण है। यहाँ केवल मणियों का प्रकाश है। इस लोक में दैत्य दानवों की आबादी और उनका ही राज्य है।

3. महातल-

यह लोक रसातल से दश सहस्त्र योजन (*योजन*

= चार कोश) ऊपर है। इस लोक में सर्पों की आबादी है, और सर्प ही यहां का राजा है। यह लोक उनके अनुकूल सभी पदार्थों से भरपूर है। यहां अनेक प्रकार के सुख विलास की सामग्री परिपूर्ण हैं। यहां पर मणियों का प्रकाश है।

4. तलातल–

यह लोक महातल से दश सहस्त्र योजन ऊपर है। यहां पर राक्षसों का निवास है। असुरराज मयासुर यहॉ राज्य करता है। यहां पर अपार सुख–भोग तथा मणियों का प्रकाश है और राजा बलि के आधिपत्य में है।

5. सुतल–

यह लोक तलातल लोक से दश सहस्त्र योजन ऊपर है। यहां पर दैत्य दानवों का निवास है। यहीं पर राजा बलि राजधानी बनाकर निवास करते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी यथाक्रम चार–चार माह द्वार पर आकर राजा बलि को दर्शन देते हैं। यहॉ किसी प्रकार के राग, द्वेष और आधि–व्याधि का प्रकोप नहीं होता है और अनेक प्रकार के सुख भोग की सामग्री प्राप्त हैं। यह स्थान मणियों के प्रकाश से देदीप्यमान है।

6. वितल–

यह लोक भी नीचे लोक से दश सहस्त्र योजन

ऊपर है। यहां पर दानवों की आबादी और राज्य है तथा मणियों का प्रकाश है। यहाँ अपार सुख विलास की अनुकूल सामग्रियां प्राप्त हैं। यहीं पर हाटकेश्वर महादेवजी भवानी सहित विराजमान हैं। यहाँ हाटक नामक रस की नदी बहती रहती है।

7. अतल–

यह वितल लोक से दश सहस्त्र योजन ऊपर है, मयदानव राक्षस के पुत्र बल का आधिपत्य है और वह बड़ा चतुर मायावी दानव है जिसने यहां नाना प्रकार के वन, उद्यान, महल, मन्दिर आदि को माया से रचकर स्वर्ग को भी तुच्छ कर दिया है। हाटक नाम के रस को बनाकर सब दैत्य दानवों को पान कराकर सबको शक्ति प्रदान कर देता है।

इस प्रकार ये सातों लोक स्वर्ग से भी अधिक ऐश्वर्यपूर्ण एवं सुखसाधनों से परिपूर्ण हैं।

नीचे के सात लोकों को बिलस्वर्ग अर्थात भूविवर भी इनका नाम है। क्योंकि ये सब पृथ्वी के भीतर बिल के सदृश हैं। इनका विस्तार स्वर्ग की भांति महान नहीं है, किन्तु सौ–सौ योजन के लम्बे चौड़े हैं। ऊँचाई में दश–दश सहस्त्र योजन एक दूसरे के ऊपर नीचे हैं। जो सब ऋतुओं में सुखदायक और सर्वसुख से परिपूर्ण हैं।

सात पातालों के ऊपर
सात लोकों का वर्णन

मृत्युलोक / भूलोक :

यह लोक विराट पुरुष का उदर है। जिस प्रकार पेट द्वारा शरीर के अन्य सभी अंगों का पालन–पोषण होता है, उसी प्रकार इस लोक द्वारा विराट के सभी लोकों का पोषण होता है। विराट पुरुष के सभी अंगों में यही अंग (लोक) सर्वोत्तम तथा उपादेय है। देवताओं को भी यह लोक दुर्लभ है। वे इसके गौरव को देखकर स्वर्गादि समस्त अपवर्ग मोक्ष पदों को तुच्छ मानते हुए यहां के मनुष्यों को धन्यवाद देते हैं–

गायन्ति देवा किल गीतकानि,
धन्यास्तु ये भारत भूमि भागे।
स्वर्गापवर्गस्य च हेतुभूता,
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ।।

अर्थः– स्वर्ग और मोक्ष के हेतुभूत ऐसे महापुरुषों को देव भी धन्य–धन्य कहकर उनके यशोगान करते हैं।

यह मृत्युलोक पूर्व में एक ही शासन में था किन्तु मानवयुग महाराजा प्रियव्रत ने इसे सात द्वीपों में विभक्त कर दिया। जो बहुत काल तक उनके पुत्रों के अधीन रहा। किन्तु अन्य द्वीपों के दिव्य गुण और दिव्य साधन देवों के अनुकूल थे; अतः वे सब धीरे–धीरे

देवों के अधीन होते चले गये। इसी का वर्णन भागवत के पंचम स्कन्ध में विस्तार के साथ किया गया है। उससे भी अधिक स्पष्ट और संक्षिप्त वर्णन विष्णु पुराण में मिलता है।

मृत्युलोक के मध्य में जम्बू द्वीप है । उसके चारो तरफ लवण समुद्र है । उसके बाद प्लक्ष द्वीप है, प्लक्ष द्वीप को घेरकर इक्षु समुद्र है। उसके बाद शाल्मली द्वीप आता है, उसको घेरकर सुरा का समुद्र है। उसके बाद कुश द्वीप है, उसके चारों तरफ घृतसमुद्र है। उसके बाद क्रौंच द्वीप है। उसको घेरकर क्षीर समुद्र है। उसके बाद पुष्कर द्वीप आता है, उसको घेरकर माठा जल का समुद्र है, उसके बाद सोने की भूमि आती है, सोने की भूमि के बाद लोकालोक पर्वत है।

उपरोक्त सातों द्वीप और सातों समुद्र एक दूसरे की अपेक्षा दुगना होते चले गये हैं। जैसे–जैसे द्विपों का विस्तार बढ़ता चला गया है, उसी प्रकार समुद्र भी एक दूसरे से दुगने होते चले गये हैं। इन सबके मध्य भाग में जम्बूद्वीप स्थित है। जम्बू द्वीप को घेर के जो सात द्वीप और सात समुद्र आये हैं, चक्रावृत चारों ओर से ऊपर को बढ़ते हुए चले गये हैं, जो स्वर्ग के साथ जा मिले हैं और यह सब विस्तार मृत्युलोक में गिना जाता है।

जम्बू द्वीप का विस्तार एक लक्ष योजन है। मध्य में सुमेरु पर्वत है, जो एक लक्ष योजन ऊंचा है और

सोलह सहस्त्र योजन पृथ्वी के अन्दर प्रविष्ट है और चौरासी सहस्त्र योजन पृथ्वी के ऊपर है। मुमेरु के चारों ओर नव खंड हैं– हरिवर्ष, किंपुरुष वर्ष, भारत वर्ष, भद्राश्व खंड, केतुमाल खंड, इलावृत खंड, रम्यक वर्ष, हिरण्य वर्ष, कुरु वर्ष।

जिस भारत देश में हम रहते हैं, यह तो भारत खंड का केवल नौंवां भाग है, और प्रत्येक खंड की मर्यादा महान पर्वतों से बाँधी है प्रत्येक खंड में भगवान विष्णु के नव अवतारों की अलग–अलग प्रतिष्ठा है।

जम्बूद्वीप के नौखंड में से भारतवर्ष का जो नौवाँ खण्ड है, वह पुनः नौ खण्डों में विभक्त है, यथा–इन्द्र द्वीप, कशेरूमान, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान, नागद्वीप, सौम्यद्वीप, गान्धर्वद्वीप, वारुण और हिन्दुस्तान। त्रिलोकीनाथ ने तीनों (पाताल, स्वर्ग, वैकुण्ठ) लोकों में मृत्युलोक और मृत्युलोक में जम्बूद्वीप एवं जम्बूद्वीप में भी भारत वर्ष को उत्तरोत्तर विशेष महत्त्वपूर्ण तीर्थ बनाया है। कर्मभूमि होने के कारण भारतवर्ष का गौरव सबसे अधिक माना गया है, इसके अलावा भगवान विष्णु के चौबीस अवतार यहां पर हुए हैं। ऋषि महर्षि, बड़े–बड़े भक्त लोक और पूर्णब्रह्म परमात्मा के अंशावतार श्री कृष्णजी, धनी श्री देवचन्द्रजी महाराज तथा महाप्रभु श्री प्राणनाथजी महाराज के अवतरण के कारण यह मृत्युलोक धन्य है। इस प्रकार तमाम अवतारों के तथा पूर्णब्रह्म परमात्मा के चरण स्पर्श का

सौभाग्य केवल इसी खंड को प्राप्त है।

स्वर्ग के समान सुखों को देने वाले तथा मानसिक विचारों को पवित्र करने वाले साढ़े तीन कोटि तीर्थ स्थान भी इसी खंड में हैं–

सार्धत्रिंशकोटितीर्थेषु स्नानपुण्यप्रभावत : ।
प्रादुर्भूतो मनसि में विचारः सोऽयमीदृश :।।

(महोपनिषद्)

अपरा विद्या वेद, शास्त्र, उपनिषद आदि का प्रचार अथवा तत्त्वबोध तथा पराविद्या ब्रह्मज्ञान द्वारा ब्रह्मतत्त्व का बोध भी यहीं पर होता है। ऋषि महर्षि एवं अनेक महापुरुषों ने अपने–अपने तीर्थंकर चरणों से स्पर्श करके इसको अपार गौरव प्रदान किया है। कर्म, उपासना तथा ज्ञान इन तीन कांडों का सम्यक् अनुसरण भी इसी खंड में होता है।

धर्माधर्म एवं सदसत्–विवेक के लिये एकमात्र यही खंड ज्ञानभूमि है। इसी खण्ड में तीन देवों की तीन पुरियाँ है। जैसे– ब्रह्मा की प्रयाग, विष्णु की मथुरा और शिव की काशी। अपनी–अपनी विशेष सत्ता से यहां पर तीनों देव निवास करते हैं। इस खण्ड की सबसे महत्त्व की बात तो यह है कि आत्म–साधन का मुख्य साधनरूप परमात्मा की जैसी कुछ सेवाभाव और भक्ति यहां बन सकती है, वैसी अन्यत्र कदापि नहीं। यही कारण है कि जितने उच्च कोटि के महापुरुष होते हैं, वे मोक्ष सुख को ठुकरा कर बार–बार इसी भूमिका पर मनुष्य जन्म धारण करना स्वीकार

करते हैं।

यह कर्मभूमि है। इसके अतिरिक्त और, जितने भी लोक या खंड हैं, वे भोगभूमि हैं।

यहां पर जैसा शुभाशुभ काम्य अथवा त्रिधा भक्ति, मनुष्य करता है, उसी के अनुसार उसे पाताल से लेकर श्री बैकुण्ठ तक के लोकों का सुख प्राप्त होता है। जिस सुरदुर्लभ मनुष्य तन से चार पदार्थों– धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, की सिद्धि मिलती है, वह तन भी इसी खान का अमूल्य रत्न है। यहां के मनुष्यों के आध्यात्मिक वैभवों को देखकर स्वर्ग के देवता भी तरसते हैं और इनके भाग्य की प्रसंशा करते हैं–

तत्रापि भारतमेव वर्ष कर्मक्षेत्रमन्यान्यष्टर्षाणि स्वर्गिणां पुण्यशेषोपभोग स्थानानि भौमानि स्वर्गपदानि व्यपदिशन्ति।

अर्थात्– नवों वर्षों में भारत वर्ष ही कर्म भूमि है, शेष आठ वर्ष स्वर्गवासी पुरुषों के स्वर्ग भोग से बचे हुये पुण्यों को भोगने के स्थान हैं। अतएव उन्हें भूतल के स्वर्ग भी कहते हैं।

पचास करोड़ योजन विस्तार वाले मृत्युलोक में मनुष्यों की प्रधानता है, यहां पर मनुष्यादि चौरासी लाख योनियों की आबादी (चार लाख मनुष्यों की, नव लाख जलचर, की, दश लाख पक्षियों की, तीस लाख चार पांव वाले पशुओं की, अग्यारह लाख कीट पतंगों की और बीस लाख योनियां स्थावर वृक्षादि की) हैं। प्रत्येक प्राणी अपने–अपने शुभाशुभ कर्म के

अनुसार योनि प्राप्त करके निरंतर दुख सुख का भोग किया करता है। अस्तुः भूतल से ऊपर सूर्य और चन्द्र भ्रमण करते हैं। अन्य तारागण भी इसी प्रकार दूर–दूर पर भ्रमण किया करते हैं। उनसे इस लोक के कुछ भागों में प्रकाश मिला करता है। इस लोक को पहली भूमिका कहते हैं। यहां पर नित्य प्रलय हुआ करता है।

इसके ऊपरी भाग आकाश में मेघ मंडल है जहां पर वरुण, पुष्कर, काल, नील, आवर्त, द्रोण, तप आदि अनेक मेघ निवास करते हैं। वे इन्द्र के आज्ञानुसार पृथ्वी पर जल वायु प्रदान करते हैं।

भुवर्लोक (पितृलोक) :

मृत्युलोक से सौ सोजन ऊपर भुवर्लोक है, जहाँ पर अर्यमा आदि पितृगण, सिद्ध, विद्याधर, यक्ष, भूत, प्रेत, पिशाच आदि अनेक योनियों के जीव निवास करते हैं। इसे पितृलोक भी कहते हैं।

जहाँ तक पृथ्वी लोक के प्राणी पक्षी विमान आदि जा सकते हैं, वह मृत्युलोक माना जाता है। उसके आगे सूक्ष्म पवन है, जिसे सूक्ष्म–शरीर धारण करने वाले भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, किन्नर आदि को सूक्ष्म जीवन–शक्ति प्राप्त रहती है। मृत्युलोक के स्थूल शरीर वाले प्राणी को वहाँ का पवन अनुकूल नहीं होता। यदि हम लोग अपने शरीर के पवन को योगाभ्यास द्वारा उतना ही सूक्ष्म बना लें तो सूक्ष्म

पवन वाले देश में हम भी जा सकते हैं।

इनको अन्तरिक्ष लोक, द्युलोक आदि नामों से भी पुकारा जाता है।

स्वर्गलोक :

यह मृत्युलोक से तीसरा लोक है। भुवर्लोक के ऊपर के भाग के सुमेरु के शिखर पर विस्तृत रूपसे स्वर्गलोक शोभायन है। स्वर्ग आठ पुर वाला है। इन्द्र, वरुण, कुवेर, यम आदि देवों की आठों दिशाओं में आठ पुरियां हैं। पर आदिनारायण के दशवां स्वरूप (प्रतिनिधि रूप) इन्द्र सबसे प्रधान देव हैं। तैंतीस कोटि देव तथा उनकी देवांगनाएँ यहाँ पर स्वर्ग सुख को स्वच्छन्द रूप से भोगती रहती हैं। कल्प वृक्ष, पारिजात, कामधेनु के द्वारा यहाँ के देवों का यथेष्ट प्रकार के विविध स्वर्गीय सुख कल्पना मा; से प्राप्त होते हैं।

जो लोग कर्म के बल से अमुक समय के लिये स्वर्ग को प्राप्त करते हैं, वे पुण्य का क्षय होने पर पुनः मृत्युलोक में जन्म–मृत्यु के चक्कर में पड़ा करते हैं। इष्ठा–पूर्त (धर्म कार्य) करने वाले देवयोनि को प्राप्त होते हैं।

इष्टे यज्ञे यद्दीयते दक्षिणादि तदैष्टिकम्।
बहिवैद्यां च यद्दानं दीयते तद्धि पौत्रिजम्।।
वापीकूप तडागादि खन्यते परतुष्टये।
आरोपश्चैव वृक्षाणां पौर्तिकं तत्प्रचक्षते ।।

अर्थः वेद शास्त्रानुसार यज्ञ यागादिक में जो कुछ दक्षिणा रूप में दिया जाता है, वह 'ऐष्टिक' कहा जाता है। लोकोपकार के लिये, वापी, कूप, तालाब, गौशाला की व्यवस्था कर देने को एवं जनता के लाभार्थ बाग, बगीचा, सदाव्रत–क्षेत्र, धर्मशाला, पाठशाला आदि की स्थापना करने को 'पौर्त्त' कर्म कहते हैं। 'ऐष्टिक' और 'पौर्त्त' कर्म का शुभ फल भी स्वर्ग में मिलता है। सौ अश्वमेध यज्ञ से तो इन्द्र का पद भी प्राप्त होता है। परन्तु यह सब स्थायी नहीं है, थोड़े समय के पश्चात् पुनः चौरासी लाख योनि के चक्कर में पड़ना पड़ता है। इससे जन्म मरण का भय मिटता नहीं है।

इस स्वर्ग लोक के आस पास जो विस्तृत अन्तरिक्ष है, वह भी स्वर्ग गिना जाता है। जितने तारागण, चन्द्र, सूर्य हैं, वे सब अन्तरिक्ष में ही विचरते हैं। एक शिशुमार नामक चक्र हैं, जो स्वर्ग से ध्रुव पर्यन्त स्थित है। उसी में सब तारागण और ग्रहगण अपनी अपनी कक्षा में गमन किया करते हैं। इस प्रकार देखा जाय तो स्वर्गलोक बहुत विशाल और स्वर्गीय उपभोगों से भरपूर स्थान है, जहाँ पर असंख्य देवता और पुण्यात्मा पुरुष आकर बसते हैं।

इस लोक में पृथक–पृथक तीन देवों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) की तीन पुरियाँ भी हैं, जिनमें वे अपनी–अपनी विशेष सत्ता से नित्य निवास करते हैं, यहाँ पर सर्वत्र स्वतः प्रकाशित हैं।

जब ब्रह्मा के एक दिन व्यतीत होने पर नैमित्तिक प्रलय होता है तब पाताल से लेकर इस लोक तक सब नष्ट हो जाता है। यह लोक मृत्युलोक से दूसरी मंजिल है।

स्वर्गादूर्ध्व महर्लोको यत्र ते कल्पवासिनः।
एकयोजन–कोटिस्तु महलोकोऽभिधीयते।।

(विष्णु पु0 2–7–12)

महर्लोक :

स्वर्गलोक से ऊपर महर्लोक है, जो एक करोड़ योजन विस्तार वाला है। स्वर्गलोक के आखरी और महर्लोक के नीचे ध्रुव का स्थान है, ध्रुव स्थान कल्पांत तक स्थायी है और स्वर्ग सुख तो अधिक से अधिक नैमित्तिक प्रलय तक रहता है।

यहाँ पर धर्मराज अपने गणों के सहित रहते हैं, यमराज को धर्मराज या महारूद्र भी कहते हैं। वस्तुतः ये शिवजी के प्रतिनिधि स्वरूप हैं और आदिनारायण के नौवें स्वरूप हैं।

धर्मराज अपने असंख्य गणों के सहित यहीं पर पाप पुण्य का निर्णय करते हैं। जब पापियों को दण्ड देते हैं तब इनका नाम यमराज हो जाता है। पुण्यात्मा के न्याय के समय वे धर्मराज कहलाते हैं। प्राणियों का शुभाशुभ कर्मों का यहीं पर न्याय होता है और न्याय के अनुसार ही जीव को स्वर्ग–नर्क में सुख–दुःख भोगने के लिये भेजा जाता है। इसे अकृत लोक भी

कहते हैं।

कल्पांत के समय इसका लय नहीं होता, परन्तु उस समय नीचे के दश लोकों का नाश हो जाने पर जब धर्मराज का सारा कार्य बन्द हो जाता है, तब अपने गण तथा ध्रुव सहित ऊपर के लोक में चले जाते है। जब पुनः नैमित्तिक प्रलय के बाद सर्ग–विसर्ग बढ़ता है और नयी सृष्टि होती है तो ये फिर अपने इसी लोक में आ जाते हैं। यह लोक भी स्वयं प्रकाशित है।

जनलोक :

द्वे कोटि तु जन लोको यत्र ते ब्रह्मणः सुताः।
सनन्दनाद्याः कथिता मैत्रेयाऽमल–चेतसः।।

(वि. पु. 2–9–13)

महर्लोक से दो करोड़ योजन ऊपर विस्तृत यह जनलोक है। जहां पर ब्रह्माजी के मानसिक पुत्र सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार तथा भृगु, मरीचि, अंगिरा, पुलस्त्य, अत्रि, वसिष्ठ, पुलह, ऋतु, दक्ष और नारद आदि निवास करते हैं। यह भी अकृत लोक है और स्वतः प्रकाशित है।

तपलोक :

जनलोक से आठ करोड़ योजन ऊपर तपलोक है। यह भी स्वयं प्रकाशमान और अकृत लोक है। यहां पर इच्छामात्र से सब मनोरथ पूर्ण होते हैं।

महर्लोक, तपलोक और सत्यलोक, योगी, तपस्वी, सन्यासी एवं महात्मा पुरुषों को उनके तप के पुण्य से प्राप्त होते हैं। जो जितना महान तपस्वी होता है, उतने ही उत्कृष्ट लोकों को प्राप्त करता है। उन्हीं को यहां एक प्रकार की मुक्ति का आनंद प्राप्त होता है, परन्तु वह कल्प के अन्त तक ही स्थायी रहता है। उसके बाद वह आनंद छिन जाता है और पुनः जन्म लेना पड़ता है।

सत्यलोक (बैकुण्ठ) :

षड्गुणेन तपोलोकात्सत्यलोको विराजते।
अपुनर्मारका यत्र ब्रह्मलोको हि स स्मृतः।।

(वि.पु. 2–7–15)

तपलोक से बारह करोड़ योजन ऊपर सत्यलोक शोभायमान हैं, जिसे ब्रह्मलोक भी कहते हैं।

यहां पर ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों देवों की तीन पुरियां हैं। अपनी–अपनी पुरियों के तीनों अध्यक्ष हैं। यहां पर यहां की पुण्यात्माएँ नाना प्रकार के पारिजातक, कल्पवृक्ष, मंदार, अम्बुज, नाग, पुन्नाग, उत्पल आदि आनंद भोगती हैं। यहां पर मध्य में बैकुंठ धाम, दाहिनी तरफ कैलाशपुरी एवं बांई तरफ ब्रह्माजी की 'ब्रह्मपुरी' है। तीनों देवों के धामों में उनके भक्तों को सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य नामक चार प्रकार की मुक्तियाँ प्राप्त होती हैं। जो जिस देव का भक्त है और जिस प्रकार की भक्ति को प्राप्त हुआ है,

उसे उसी प्रकार का स्वरूप मिलता है।

अपने–अपने आराध्य देव के धाम को प्राप्त हो जाने को मुक्ति कहा जाता है, जो चार प्रकार की होती हैं। विशेष तप के प्रताप से सालोक्य मुक्ति प्राप्त होती है। ध्यान की विशेषता से सारूप्य, भक्ति की विशेषता से सामीप्य और ज्ञान की विशेषता से सायुज्य मुक्ति मिलती है।

बैकुण्ठादिषु लोकेषु
गमनागमनं प्रभो।
तत्सृष्टौ वहवो जीवाः
केचिद्विष्णोरूपासकाः।
केचिच्च प्रकृतौ लीना
जडास्ते नष्टचेतनाः।।
केचिद्रुद्रे रवौ केचित्
रौद्रे शाक्तौ तथा परे।
अन्ये कर्मरता जीवा
भ्रमन्ति च मुहुर्मुहुः।।

(सनत्कुमार संहिता)

अर्थ– बैकुण्ठ, कैलाश आदि लोकों को प्राप्त करने से आवागमन नहीं मिटता। इस विश्व में अनन्त जीवों की सृष्टियाँ हैं। इनमें से कई विष्णु की उपासना में रत हैं तो कई माया में लीन हैं, जो सब प्रकार से नष्ट चेतन हो चुके हैं। कुछ मनुष्य शिवजी की उपासना में तत्पर हैं तो कुछ सूर्योपासना में ही मस्त हैं। कुछ लोग गौरी–गणेश को ही परमात्मा मानकर

उन्हीं के ध्यान पूजन में तल्लीन हो रहे हैं। कुछ मनुष्य देवी–देवता को भी छोड़कर पीर, पैगम्बर, फकीर और चमत्कारी लोगों को सब कुछ समझकर उनकी उपासना करते हैं। कुछ मनुष्य कर्मकाण्ड को ही उत्तम मानकर उसी में निमग्न हो गये हैं। इस प्रकार नाना मत मार्गों में पड़े हुए मनुष्य बारम्बार जन्म मरण को प्राप्त होते हैं। शिव, ब्रह्मा, विष्णु आदि देवों की नवधा भक्ति के द्वारा सगुणोपासना करने वाले शैव एवं वैष्णव भक्त अपने–अपने इष्ट देवों के धामों में चार प्रकार की मुक्ति प्राप्त करते हैं। इन्हीं धामों से उन देवों के अवतार भी हुआ करते हैं। विष्णु के चौबीस अवतार बैकुण्ठ से ही होते हैं।

विष्णु भगवान के चौबीस अवतार निम्नानुसार हैं :–
1. सनकादि, 2. वाराह, 3. नारद, 4. नारायण, 5. कपिल, 6. दत्तात्रेय 7. यज्ञ 8. ऋषभदेव, 9. पृथुराज, 10. मत्स्य 11. कूर्म, 12. धन्वतरि, 13. मोहिनी, 14. नृसिंह 15. वामन, 16. परशुराम, 17. वेदव्यास, 18. रामचन्द्र 19. बलराम, 20. कृष्णजी, 21. बुद्ध 22. कल्कि। इनके साथ हयग्रीव और हंसावतार को जोड़ देने से चौबीस अवतार होते हैं।

बुद्ध और कल्कि अवतार में गुप्त रहस्यपूर्ण अवतारान्तर भी हैं।

सत्यलोक पूर्वोक्त सभी लोकों का मूर्धन्य लोक है। इस प्रकार से विराट पुरुष के विश्व रूप में ये 14 लोक शोभायमान हैं।

प्राकृतिक प्रलय के समय यह महानारायण में लय हो जाता है। ये तीनों देव (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) नारायण के आठवें सातवें और छठवें स्वरूप हैं। इस सत्यलोक में स्वतः प्रकाश है। मृत्युलोक से यह चौथी भूमिका है।

नर्क लोक

जिस प्रकार मृत्युलोक में मनुष्य-प्राणों को पुण्य कर्म से स्वर्ग, वैकुंठ, कैलाश आदि ऊर्ध्व लोकों की प्राप्ति होती है, इसी तरह पाप कर्म करने वाले को नर्क लोक की प्राप्ति होती है। नर्क लोक कहां पर है और कैसा है उसका दिग्दर्शन यहाँ पर कराया जायेगा।

श्रीमद्भागवत महापुराण के पंचम स्कन्ध में नरकों का विस्तारशः वर्णन है। नरक का विस्तृत वर्णन जानने के लिये 'विराट पट दर्शन' और भागवत ग्रंथों का अध्ययन करना चाहिये। राजा परीक्षित ने श्री शुकदेव मुनि से नर्क लोक संबंधी प्रश्न किया और उसके उत्तर में शुकदेव जी ने बतलाया कि त्रिलोक अन्तर्गत दक्षिण दिशा की ओर जल के ऊपर और पृथ्वी के अधोभाग में नर्कों के स्थान हैं। कई विद्वान इसे पाताल और गर्भोदक समुद्र के ऊपर भी बताते हैं।

नीच कर्म करने वाले मनुष्यों को इस पांचभौतिक स्थूल शरीर के त्यागने के बाद एक प्रकार का यातना देह प्राप्त होता है, जो पांच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पांच विषय-शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध तथा मन और जीव, जो दुःख मूल का भोक्ता है सूक्ष्म रूप से इन सत्रह तत्त्वों से बना हुआ यातना देह कहलाता है।

यातना देह केवल नर्कों के दुःखों को भोगने के लिये मिलता है जो नाना प्रकार के ताप, दाह, मार, दुःख, पीड़ा आदि सहन करने में समर्थ होता है । इसे शास्त्रों में यातना देह, सूक्ष्म शरीर, लिंग शरीर आदि नाम दिये गये हैं । नर्कों के दुःखों का अनुभव करने के बाद यह शरीर पुनः अपने मूलभूतों में लय हो जाता है और जीव अपने शेष कर्मानुसार जन्म लेता है ।

यमपुरी में सैकड़ों नर्क हैं, जिनमें अधर्माचरण करने वाले जीवों को यथाक्रम एक नर्क से छुटकारा पाकर दूसरे में और दूसरे से तीसरे में ढकेल दिया जाता है । यह नियम नहीं कि प्रत्येक पापी पुरुष को सभी नर्क भोगने पड़े, परन्तु जिसका जैसा अपराध होता है उसी नुसार दो, चार, छः अथवा दश, बीस, पचास भी भोगने पड़ते हैं ।

पुराणों में बड़े विस्तार वाले, गहरे, भयंकर, घोर अन्धकार से पूर्ण, जीवों को नाना प्रकार के कष्ट पहुँचाने की व्यवस्था वाले 84 मुख्य नाम वाले नर्क कुण्डों का उल्लेख है । परन्तु इनके अलावा असंख्य अप्रसिद्ध नरक हैं, जो छोटे बड़े सभी प्रकार के हैं । श्रीमद्भागवत पुराण में बतलाया गया है कि नर्क हजारों की संख्या में है किन्तु उसमें केवल 28 नर्कों का ही उल्लेख किया गया है ।

राजा परीक्षित से बड़ी कठिनाई के साथ 28 नर्कों का ही वर्णन सुना गया । इनके बाद के नर्कों की यातनायें उनसे सुनी नहीं जा सकीं । इसीलिये शेष नर्कों का वर्णन नहीं हो पाया । इन 28 नर्क क्रूर एवं अति भयावह हैं। इसीलिये 56 नर्कों का वर्णन नहीं किया गया । श्री मुखवाणी में कहा है–

छपन रह्या बिन सांभाल्या, तेतो सुणी न शक्यो राय ।

अष्टावरण

(विराट की प्रथम समष्टि)

चौदह लोकों को घेर कर आठ प्रकार के आवरण हैं, एक आवरण से दूसरा दस गुना लम्बा चौड़ा है । ये आठों आवरण भगवान की अपरा प्रकृति के स्वरुप हैं ।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहंकार इतीयं में भिन्ना प्रकृतिरष्ठधा ।। (गीता 7-4)

भगवान श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि हे अर्जुन ! भूमि, जल, तेज, पवन, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार–ये मेरी आठ प्रकृतियां हैं ।

1. पृथ्वी

पचास करोड़ योजन विस्तार वाला पृथ्वी के आवरण ने चौदह लोकमय ब्रह्मांड को चारों ओर से घेर रखा है । जिस प्रकार नारंगी के ऊपर उससे लगा हुआ छिलका होता है, उसी प्रकार यह आवरण भी चौदह लोकों से बिलकुल लगा हुआ है । पाताल में शेषशायी नारायण तथा सबसे ऊपर सतलोक है । इन सभी के चारों ओर घेरकर यह पृथ्वी का आवरण है । शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध ये पांच इसके गुण हैं । पीत रंग और ब्रह्मा देवता हैं । इसमें सहस्त्रों सूर्य का सा स्वतः प्रकाश है ।

2. जल

दूसरा आवरण जल का है । पृथ्वी से दस गुना इसका

विस्तार है । शब्द, स्पर्श, रूप और रस ये चार इसके गुण हैं । स्वेत रंग, विष्णु देवता तथा इसमें भी सहस्त्रों सूर्यों का सा स्वतः प्रकाश है ।

3. अग्नि

जल से ऊपर दस गुना अधिक विस्तार वाला यह अग्नि तत्त्व का आवरण है । शब्द, स्पर्श और रूप ये तीन इसके गुण हैं । लाल रंग तथा शिव देवता हैं । इसमें भी सहस्त्रों सूर्यों का सा स्वतः प्रकाश है ।

4. वायु

अग्नि के ऊपर उससे दस गुना अधिक विस्तृत यह वायु का आवरण है । शब्द और रूप इसके दो गुण हैं । हरा रंग और ईश्वर देवता है तथा सहस्त्रों सूर्यों का स्वतः प्रकाश है ।

5. आकाश

पवन तत्व के ऊपर, उससे दस गुना विस्तार वाला आकाश तत्त्व का आवरण है । इसका गुण शब्द है । इसका श्याम रंग और सदाशिव देवता हैं । सहस्त्रों सूर्यों का सा स्वतः प्रकाश है ।

6. मन

आकाश से ऊपर उससे दस गुना विस्तार वाला यह मन का आवरण है । इसमें अनंत रंग तथा माया की अनन्त लीलाएँ हैं । बाहर से तो इसमें असंख्य सूर्य का सा प्रकाश

प्रतीत होता है परन्तु अन्दर घोर अन्धकार व्याप्त है ।

इसके अनन्त रंग हैं एवं अनन्त लीलाओं की कल्पना उठा करती है । इसके अज्ञान रूप, इच्छाशक्ति, महाघोर, तमरूप, अनेक नाम हैं । यहां अनन्त सूर्योंका–सा प्रकाश है । अनेक पुरुष इसको भी ईश्वर मानकर पूजते हैं ।

7. बुद्धि

मन रूप तामस अहंकार के ऊपर इस बुद्धिरूप राजस अहंकार का दस गुना विस्तार है । यह पचास नील योजन तक विस्तृत है । इस बुद्धिरूप आवरण में अनेक चित्र विचित्र माया के चरित्र प्रति क्षण उठा करते हैं । यह बुद्धि का भंडार क्षेत्र भी है । अनेक मत मतान्तर इसी को ब्रह्म मानकर भजते हैं । इसमें माया की अनन्त लीलायें हैं ।

8. अहंकार

बुद्धि से ऊपर उससे दश गुना (पांच पद्म योजन) विस्तार वाला यह अहंकार का आवरण है, इसी को सात्त्विक अहंकार भी कहते हैं । इसका धूम्र वर्ण है और शुद्ध सत्त्वगुण को धारण किया हुआ है । इसके अन्तर्गत अनेक सूक्ष्म दृश्य भी प्रतीत होते हैं जिनका साक्षात्कार योगी पुरुषों को हुआ करता है । कई मत–पंथ वाले इसको ही ईश्वर मानकर भजते हैं ।

चौदह लोकों की समष्टि रूप विराट सहित इन आठ आवरणों को आदिनारायण (महाविष्णु) के स्थूल शरीर का बिन्दु स्वभाव कहा गया है ।

ज्योति स्वरूप (ॐकार)

(महाविष्णु के स्थूल में नाद स्वभाव, व्यष्टिरूप प्रणव)

यह नाद स्वभाव ज्योति स्वरूप अष्टावरण के ऊपर है। इसका स्वरूप शिव लिंगाकार पंचमुखी है और विस्तार एक अरब योजन है। इसके दस भुजा तथा पन्द्रह नेत्र हैं। यह स्वतः परम प्रकाश स्वरूप महावीर तथा ब्रह्मादि देवों को अलभ्य है। यह शुद्ध अहंकार तथा विराट का मूल है और जड़-चेतन की ग्रंथि है।

इसके साथ पाँच प्रमुख शाक्तियाँ इधिदीपा, चमोचक, ऊर्ध्वगा, मध्यमा, और परमा हैं। उनमें प्रत्येक के साथ और भी अनेक शक्तियाँ विद्यमान हैं। सत्व, रज और तम तीन गुण इसी से उत्पन्न होते हैं। लोक में अहंकार पंचमुखी शक्ति, शब्दब्रह्म, प्रणवाक्षर शिव, मृत्युंजय, ज्योति स्वरूप, ओमित्यक्षर, व्यापक ब्रह्म, जीवस्वरूप, महापुरुष और घट-घटवासी राम आदि इसके अनेक नाम प्रसिद्ध हैं। इसकी जाग्रत अवस्था है। यह नारायण का पाँचवां स्वरूप (सुरति) तथा मृत्युलोक से पाँचवीं भूमिका पर स्थित है। यहाँ पर योगेश्वर ही पहुँच पाते हैं।

इसको व्यष्टि ज्योति स्वरूप भी कहते हैं। यद्यपि वास्तविक 'ज्योति स्वरूप' का स्थान तो आदिनारायण से भी पर अव्याकृत में है तथा गायत्री का वास्तविक स्वरूप भी वहीं पर है। क्योंकि वहीं पर असंख्य ब्रह्माण्डों की ज्योति, समस्त

जीवों की चैतन्य समष्टि का उद्गम स्रोत जड़-चेतन की गांठ का मूलकारण है । वहीं से असंख्य जीवों का उदय लय होता है । यहाँ से प्रत्येक ब्रह्मांड के लिये जितने जीवों को भेजा जाता है, वे सब अपने-अपने ब्रह्मांड के लिये अपने-अपने ब्रह्मांड के साथ संगठित इस व्यष्टि ज्योति स्वरूप के नाम से ही पुकारते हैं ।

प्रत्येक ब्रह्मांड के साथ एक एक व्यष्टि ज्योति स्वरूप संगठित है । मूल ज्योति स्वरूप से पृथक् समझने के लिये इसे नाद स्वभाव ज्योति कहते हैं ।

अकारश्चाप्युकारश्च मकारो विन्दुनादकौ ।
पञ्चाक्षराण्यमून्याहुः प्रणवस्थानि पण्डिताः।।

(तंत्रोक्त)

अर्थः- अकार से विष्णु उकार से ब्रह्मा, मकार से शिव, बिन्दु से अष्टावरण युक्त विराट, नाद से प्रणवाक्षर नाद स्वभाव ज्योति स्वरूप इस प्रकार ये पाँचों प्रणव के स्वरूप में ही माने गये हैं । इस विश्व के जीवों के हृदय में जो चेतन शक्ति है, उस पर इसका शासन होने से इसे ईश्वर भी कहते हैं । यथा-

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यंत्ररूढानि मायया ।।

(गीता)

अर्थः- यह ज्योति सबके हृदय में व्यापक होकर जीवों को शक्ति प्रदान करती हैं । अतएव इसे ईश्वर कहना युक्ति संगत है । यदपि वास्तविक ईश्वर तो नारायण-महाविष्णु का ही नाम है, क्योंकि जीव ईश्वर की उपाधि वहीं से माया के द्वारा उत्पन्न होती है और मुख्यतया जीवों को प्रेरणा भी

उनसे ही प्राप्त होती है । उपरोक्त गुण अमुक प्रमाण में इनमें भी उसी प्रकार विद्यमान हैं, अतः इसे भी ईश्वर कहा गया है ।

गायत्री शक्ति

ज्योति स्वरूप के निर्मल चेतन में गायत्री का निवास है । इसकी सहस्त्रों शक्तियाँ हैं । इससे चार वेद– ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अर्थवेद उत्पन्न हुए हैं । यह निरन्तर चारों वेदों का गान करती है । इसका वाहन मयूर है । किसी मतानुसार हंस है । इसके महल, मंदिर, छत्र, सिंहासन, स्वरूप–श्रृंगार आदि–संपूर्ण वैभव अत्यन्त मनमोहक है । यहाँ सभी वस्तुएँ स्फटिक (श्वेत) वर्ण के हैं । इसके अन्तःकरण में ब्रजलीला तथा रासलीला का प्रतिभास पड़ा हुआ है । यह आदि नारायण का चौथा स्वरूप तथा मृत्युलोक से छठवीं भूमिका में स्थित है ।

गायत्री देवी के उपासना करने वाले गायत्री मंत्र 'ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्' का जप करते हैं । इसका अर्थ है–उत्तम पुरुष, सच्चिदानन्द स्वरूप उस सविता देव (अक्षरब्रह्म) के श्रेष्ठतम भजनीय चेतन ज्योति (अक्षरातीत) का चिंतन करते हैं, जो हमारे अन्तःकरणादि वृत्तिओं के मलविक्षेप, आवरण नाशार्थ निष्काम कर्मयोग, भक्ति योगस्थ आत्मज्ञान योग में प्रेरणा करें ।

महतत्त्व :

(आदिनारायण का सूक्ष्मतम स्वरूप)

दूसरी अन्तःसमष्टि

अतः परं सूक्ष्मतममव्यक्तं निर्विशेषणम् ।
अनादिमध्यनिधनं नित्यं वाङ्मनसः परम् ।।

श्रीमद्भागवत 2-10-34

अर्थ- आदि नारायण के नाद-बिन्दुमय स्थूल स्वरूप से पर अनंत विराट का कारणभूत नारायण का वह सूक्ष्मतम अव्यक्त स्वरूप है, जो मन-वाणी से पर तथा निर्विशेष है एवं जिसके मूलतत्त्व (अक्षर के मन स्वरूप) का कभी उत्पत्ति-लय नहीं होता ।

स्थूल स्वरूप पर यह आदिनारायण सूक्ष्मतम स्वरूप हैं । यद्यपि इसमें असंख्य चंद्र सूर्यों का-सा स्वतः प्रकाश है तथापि अपने अन्तर्गुणों के कारण महान अंधकार नींद स्वरूप स्वप्नावस्था है । अज्ञान का मूल कारण यही है । असत्य जड़, दुःख ये तीन इसी के स्वभाव हैं तथा जड़ चेतन की ग्रन्थी हैं ।

ज्ञानशक्ति गायत्री, चार वेद, दस महाविद्या आदि इसी के अंगभूत हैं । दस महाविद्याओं के नाम हैं :- काली, तारा, भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, भैरवी, धूमावती, बगलामुखी, मातंगी, षोडशी, और कमला । यहां पर विद्या, ब्रह्मविद्या तथा अन्य चौबीस सहस्त्र शक्तिओं के सहित सुमंगला शक्ति रहती है ।

पुनः अध्यात्म, अधिदेव और अधिभूत भेद से इसका बहुत विस्तार है ।

इसके अतिरिक्त यहाँ पर अनेक मनमोहक चमत्कार हैं । सम्पूर्ण लीला सहित ब्रजमंडल–जो आदि पुरुष के शुद्ध कारण में है– तथा रास लीला जो शुद्ध महाकारणों में है, वह यहां पर प्रतिभासित है । वेदान्तियों का यही ब्रह्म है । मृत्युलोक से यह सातवीं भूमिका में स्थित है ।

अव्याकृत सूक्ष्म–विद्यापाद में जो काल निरंजन पुरुष का स्थान है, वही प्रतिबिम्बत होकर यहां पर अधिभूत, अध्यात्म और अधिदैव रूप से त्रिविध हो जाता है । महतत्त्व में जितना भी कुछ लीला वैचित्र्य है, वह सब उसी काल निरंजन पुरुष का प्रतिबिम्बित रूपान्तरण है ।

अचिन्त्य पुरुष, महत्तम, महद्ब्रह्म, महानाद, निर्गुण, निराकर, शून्य, निरंजन आदि–आदि महानाराण में लीन हो जाता है ।

आदिनारायण का कारण स्वरूप

इच्छाशक्ति, सात शून्य

(तीसरी अन्तःसमष्टि)

पूर्वोक्त महतत्त्व से पर आदिपुरुष का कारण शरीर है, जो इच्छा शक्ति के नाम से भी प्रसिद्ध है । इसमें सात महाशून्य प्रतिबिम्बित हैं, जो एक–एक खरब योजन के विस्तार वाले हैं । इन शून्यों से अनन्त राग, तान, मीठे स्वर तथा अनेक रंगों की तरंगें उठा करती हैं । इनकी अधिष्ठात्री,

वास्तवी, अनिर्वचनीया, तुच्छा, शिव कल्याणी और उन्मुनी– ये पांच प्रमुख शक्तियाँ हैं । इनमें उन्मुनी अति प्रचंड शक्ति है, यह स्वयं आदिनारायण की सत्ता का उपभोग करती है । इन्हीं शून्यों से (पूर्व कथित) नारायण के सात (इन्द्र, धर्मराज, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, ज्योति स्वरूप और गायत्री) स्वरूपों की उत्पत्ति होती है । अजपा जप का यही स्थान है । इसमें नित्य गोलोक से साढ़े तीन करोड़ सखियों के सहित श्रीराधा–कृष्ण के आनंद बिहार (ब्रज–रास) का प्रतिभास महानारायण के द्वारा होकर पड़ता है ।

इसकी आनंदमय सुषुप्ति अवस्था है । इसके इह और अनिह दो स्वभाव हैं जिनमें से 'इह' इच्छारूप माया है और 'अनिह' अनिच्छ ब्रह्म है । इस अनिह शक्ति ने नारायण और सतलोक को मकड़ी के तार के समान सूत्र से एक दूसरे से मिला रखा है । इसके आगे जाने वाले मुक्त जीवों के लिये वही सोपान (सींढ़ी) की डोरी बन जाती है । इस इच्छाशक्ति के स्वरूप में हंसों का सरोवर है । यह अनेक जीवों के मुक्त होने का स्थान भी है, परन्तु ये सब अनित्य हैं ।

यून्यं तत्प्रकृतिर्माया ब्रह्मविज्ञानमित्यपि ।

(महोपनिषद)

इसको शास्त्रों में शून्य, प्रकृति, माया, ब्रह्म, प्रकाश स्वरूप, विज्ञान स्वरूप, पुरुष, ईश्वर, आत्मा, इच्छाशक्ति, विश्वकारण आदि विविध नामों से उल्लेख किया गया है । इससे पर आदिनारायण का महाकारण स्वरूप है ।

आदिनारायण का महाकारण स्वरूप
(क्षर पुरुष आदिनारायण महाकरण चौथी अन्तः समष्टि)

चाक्षुषः स्वप्नचारी च सप्तः सुप्तात्परश्च यः ।
भेदाश्चैतस्य चत्वारस्तेभ्यस्तुर्यं महत्तरम् ।। श्रुति

अर्थः- महाविष्णु (आदि पुरुष) की चारों अवस्था, चारों स्वरूपों में विभक्त हैं । जाग्रत (स्थूल) अवस्था में विराट तथा ज्योति स्वरूप; स्वप्नावस्था (सूक्ष्म) में महतत्त्व; सुषुप्ति (करण) अवस्था में इच्छा शक्ति, सात शून्य और इन तीनों से पर यह तुरीय (महाकारण) स्वरूप है, जो बहुत ही महत्त्वपूर्ण है ।

मृत्युलोक से यह नवमीं भूमिका है । इसमें मूल अव्याकृत के महाकारण का प्रतिबिम्ब पड़ा है, अर्थात् मूल अव्याकृत की तीनों नित्य वृन्दावन, ब्रज और पुरुष के लीलाओं का इसमें यथाक्रम प्रतिभास है । महाविष्णु का यह महाकारण मण्डल यद्यपि एक ही है, तथापि लीला भेद से इसमें तीन भाग (शुद्ध सूक्ष्म, शुद्ध कारण तथा निर्मल चेतन) की कल्पना की गई है ।

प्रथम भाग शुद्ध सूक्ष्म में मूल अव्याकृत के पुरुषलीला (सतलोक) का प्रतिभास है । यह पुरुष अपने समान अनेक हंसों के साथ सदा आनंद बिहार करता है । पुरुष का सोलह वर्षीय (किशोर) स्वरूप है तथा अनन्त सूर्यों के समान प्रकाश है । इस पुरुष लोक के सत्यलोक-अमरलोक आदि अनेक नाम हैं । यहाँ के सभी पदार्थ स्फटिक के समान उज्ज्वल हैं । इस शुद्ध सूक्ष्म में चार द्वीप हैं । प्रत्येक द्वीप में सौ-सौ करोड़ हंसरूप सखियाँ सत्पुरुष के साथ आनंद बिहार करती हैं ।

यहाँ पर धर्मदास, कबीर और सत्पुरुष ये तीन स्वरूप

हैं । इससे पहले जो सात- इन्द्र, धर्मराज, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, ज्योति स्वरूप (प्रणव) और गायत्री स्वरूपों का वर्णन किया गया है, उन सबको मिलाकर यहाँ तक क्षर पुरुष के दस स्वरूप (सुरति) होते हैं अर्थात् ये ही दस स्वरूप क्षर पुरुष के दस प्राणरूप हैं । इनके द्वारा ही क्षर पुरुष का सब कार्य चलता है ।

शुद्ध सूक्ष्म से पर शुद्ध कारण में गोपियों सहित श्री राधा-कृष्ण की ब्रजलीला का तथा निर्मल चेतन में रासलीला का प्रतिभास है । इस रासलीला में हरिदास, हित, हरिवंश, व्यास, गौतम, रूपसनातन, मधुसूदन, नित्यानंद, भारद्वाज आदि श्रीकृष्ण के भक्त पहुँचे हैं तथा इनके उपदेशों द्वारा और भी अनेक भक्त पहुँचते रहते हैं ।

यद्यपि ये लीलायें वास्तविक न होकर प्रतिभास का प्रतिभास रूप है, तथापि ब्रह्मांड के साधारण जीवों के लिये अति दुर्लभ हैं । केवल श्रीकृष्णोपासक भक्त ही यहाँ तक पहुँच पाते हैं ।

आदि नारायण के इस महाकरण रूप को महाविष्णु, महानारायण, आदिपुरुष, अव्यक्त, ईश्वर (कार्य ब्रह्म) और सबलिक तथा आनंद ब्रह्म नाम से आदेश किया गया है ।

प्रधानादिविशैषान्तं चेतनाचेतनात्मकम् ।।
एकपादं द्विपादं च बहुपादमपादकम् ।
मूर्त्तमेतद्धरे रूपं भावनात्रितयात्मकम् ।।

(विष्णु. पु. 6-7-57)

प्रकृति से लेकर स्थूल पर्यन्त चेतना चेतनात्मक जगत् एकपाद, द्विपाद, त्रिपाद और अपाद अर्थात् सब पादों की

समष्टि जो कुछ है, भगवान का त्रिगुण भावनामय है । जो त्रिगुण भावनामय है, वह सब अनित्य है, अतएव इसे संसार कहते हैं । जहाँ पर गुणों का क्षोभ समावेश है, जहाँ पर प्राकृत पदार्थों का उदय-लय है, वह सब प्राकृतिक क्षेत्र है और अनित्य है । शेषशायी नारायण (पाताल) से लेकर आदि पुरुष तक जितने भी स्वरूपों का वर्णन किया है, वे सब तथा इस विश्व के जितने भी जीव हैं, वे सब इसी महाकारण स्वरूप से उत्पन्न हुए हैं और अन्त समय इसी में लय हो जाते हैं ।

यतः सर्वाणि भूतानि प्रभवन्ति युगागमे ।
यस्मिश्च प्रलयं यान्ति पुनरेव युगक्षये ।। (श्रीमद्भा.)

अर्थ- यहीं से युगारम्भ में प्रभव होता है और युगों का क्षय होने पर इसी में सब समा जाते हैं ।

महाशून्य समष्टि

महाशून्य पांचवी क्षर समष्टि जिसमें अन्तत विश्वों के स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारणों का लय होता है ।

आदि नारायण से परे दशों दिशाओं में घेर कर शून्यों की कारण-समष्टि ही यह महाशून्य है । जिसमें असंख्य वस्तुओं का लय होता है, उसे समष्टि कहते हैं । अनेक ब्रह्माण्डों के असंख्य आकाशों का इस परमाकाश में लय होता है, अतएव इसे शून्यसमष्टि कहा जाता है ।

शास्त्रों में इसको महाशून्य रूप, माया के कारण, प्रकृति, महामाया, शब्दब्रह्म मोहनिद्रा निर्गुण, निराकार, महत्तम, अजा, परमाकाश, क्षर पुरुष आदि अलग-अलग नामों से बतलाया गया है ।

यथा सूर्योदये गेहे भ्रमन्ति त्रसरेणवः ।
तथेमे परमाकाशे ब्रह्माण्डत्रसरेणवः ।।
यथा तरङ्गा जलधौ तथेमाः सृष्टयः परे ।
उत्पत्योत्पत्त्य लीयन्ते रजांसीव महानिले ।।

(योगवासिष्ठ उ. प्र.)

अर्थः- जिस प्रकार सूर्योदय के समय गृह में असंख्य सूर्यकिरणों के त्रसरेणु प्रतीत होते हैं, उसी प्रकार परमाकाश स्वरूप में असंख्य ब्रह्माण्डरूप त्रसरेणु भ्रमण करते हैं । समुद्र तरंगों की भाँति उठ-उठ कर अपने इसी स्वरूप में विलीन हो जाते हैं । जिस प्रकार रजःकण उड़कर वायु में समाते हैं, उसी प्रकार इस परमाकाश अर्थात् महाशून्य में अखसंख्य विश्वों का उदय और लय होता रहता है ।

संख्या चेद्रजसामस्ति न विश्वानां कदाचन ।
ब्रह्मा विष्णुशिवादीनां तथा संख्या न विद्यते ।।

(देवी भा0 9-3-7)

अर्थ- यदि रजकणों को गिना जाय तो शायद गिना भी जा सके पर इन असंख्य विश्वों को गिनना असंभव है । साथ ही ब्रह्माण्डों में होने वाले असंख्य ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देव भी नहीं गिने जा सकते । इस प्रकार इस शून्य समष्टि के अन्तर्गत इन अपरिमित विश्वों के असंख्य ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवों का उदय और लय होता रहता है ।

साकार और निराकार इसके स्वरूप हैं । इनके द्वारा ही सृष्टि का विस्तार होता है । यही विशेष और आवृत्तिमय शक्ति का महामोह रूप महाप्रकृति हैं । इसके गुणों को ब्रह्म शब्द से अभिहित कर वर्णन किया गया है । इसी के अनेक

नाम मोह, अज्ञान, नींद, कर्म, काल, शून्य आदि हैं ।

मोह अज्ञान भरमना,
कर्म काल और शून्य ।
ये नाम सारे नींद के,
निराकार निरगुन ।। (श्रीमुखवाणी)

यही अगम अलख, महाकाल और अनन्त ब्रह्मांडों का मूल है । आदिनारायण को अनन्त काल पर्यन्त खोज करने पर भी इसका पार नहीं मिला । जिस प्रकार मनुष्यों के लिये विराट पुरुष का तथा विराट के लिये आदि नारायण का पार पाना दुर्लभ है, इसी प्रकार आदिनारायण के लिये भी इसका पार पाना असंभव है । चौदह लोक, अष्टावरण, ज्योति स्वरूप, महत्तत्त्व, इच्छा शक्ति, आदि नारायणादि अनन्त ब्रह्मांडों की यह महती क्षर समष्टि है । महा प्रलय में इस महाप्रकृति का भी नाश हो जाता है–

नारायणश्च शम्भुश्च संहृत्य स्वगुणान् बहून ।
महद्विष्णौ विलीनाश्च ते सर्वे क्षुद्रविष्णवः ।
महाविष्णुः प्रकृत्या च सा चैव परमात्मनि ।।

(ब्रह्म बै., कृष्ण जन्मखंड)

अर्थः– शेषशायी नारायण, विष्णु, शिव, ब्रह्मा आदि जितने भी वैभव देव हैं, वे सब अपने भक्तों को समेट कर महाविष्णु में और महा विष्णु प्रकृति में विलीन हो जाते हैं । इस प्रकार महाप्रलय में व्यष्टि और समष्टि सबका लय हो जाता है । अतएव इसको क्षर पुरुष माया भी कहते हैं ।

चार प्रकार के प्रलय

प्रलय चार प्रकार के होते हैं, नित्य-प्रलय, नैमित्तिक प्रलय, प्राकृतिक प्रलय तथा आत्यन्तिक-महाप्रलय ।

चार प्रकार के प्रलय समय के अधीन हैं।

सत्ययुग की आयु 1728000 वर्ष, त्रेता युग की आयु 1296000 वर्ष, द्वापर युग की आयु 864000 वर्ष तथा कलियुग की आयु 432000 वर्ष की होती है ।

चारों युगों को मिलाकर मनुष्य लोक के 432000 वर्ष होते हैं और देवता लोक के 12000 वर्ष होते हैं, तब उनको एक चतुर्युगी कहा जाता है । इस तरह जब एक हजार चतुर्युगी बीत जाती है, तब ब्रह्माजी का एक दिन होता है और इतनी ही बड़ी रात्रि भी होती है ।

नित्य प्रलय –

नित्य प्रलय के संबंध में शास्त्रों का मत है कि ब्रह्मा से लेकर संसार में जितने प्राणी व पदार्थ हैं, उनका निरंतर परिवर्तन होता रहता है, उनमें जो नित्य क्षीणता होती रहती है, उसको नित्य प्रलय कहते हैं ।

कई विद्वानों का मत है कि विश्व में प्राणी पदार्थ का नित्य नाश (मरण) होना होते देखा जाता है, यही नित्य प्रलय है ।

नैमित्तिक प्रलय –

जब ब्रह्माजी का एक दिन पूरा होकर रात्रि शुरू होती है तब ब्रह्मा सहित शेषशायी नारायणजी त्रिलोक को समेट कर शयन करते हैं अर्थात् तीन लोक (स्वर्ग, मृत्यु, पाताल) का नाश हो जाता है, अर्थात पाताल से लेकर स्वर्ग तक दशों लोकों का लय हो जाता है ।

इस प्रलय में महर्लोक की सीमा तक प्रलय का जल आ जाता है, कुछ भाग महर्लोक का भी जल में डूब जाता है, अमूक भाग बच जाता है । जन, तप, सत्य लोक कल्पांत स्थायी अमर लोक कहे जाते हैं । ध्रुव लोक कल्पांत स्थायी कहा जाता है, अतः वह भी बच जाता है ।

प्राकृतिक प्रलय –

ब्रह्माजी जब उनकी गणनानुसार 50 वर्ष के होते हैं, तो उनके उतने समय को एक परार्ध कहते हैं । इस तरह दो परार्ध के समय बीत जाने पर, ब्रह्माजी की 100 वर्ष की आयु हो जाती है । जब ब्रह्माजी 100 वर्ष के होते हैं वे अपने कारण में लय को प्राप्त हो जाते हैं । उस समय पंच तन्मात्रा, अहंकार, अष्टावरण, ज्योति स्वरूप तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश, शेष आदि जितने विराट के देव तथा सूक्ष्म स्वरूप की जो भी सामग्री है वह अपने मूल में लय हो जाती है । इसी को प्राकृत प्रलय कहते हैं ।

आत्यंतिक महाप्रलय –

आत्यंतिक महाप्रलय के संबंध में शास्त्रों में लिखा है कि जब आत्मज्ञान द्वारा जिसका मोहात्मक बंधन छूट जाता है और परमात्मा के अखंड स्वरूप का अनुभव करने लगता है, उसका आवागवन मिट जाता है । आत्मा के जन्म–मरण का बंधन मिट जाना और सदा सर्वदा के लिये, अखंड पद की प्राप्ति कर लेना ही आत्यन्तिक महाप्रलय है । यह व्यष्टि प्रलय की बात हुई । इसी तरह महतत्त्व का भी नाश अवश्यंभावी है । इस तरह स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण का भी नाश हो जाना महाप्रलय का गर्भित अर्थ है ।

जिस तरह एक व्यष्टि (एक जीवात्मा) के स्थूल, सूक्ष्मादि शरीर का नाश आत्यंतिक महाप्रलय कहा जाता है, इसी तरह जीवों को उत्पन्न करने वाला आदि नारायण तथा महामाया का विलीन हो जाने को भी महाप्रलय कहा जाता है । जिस प्रलय के अन्तर्गत सगुण, निर्गुण, निराकार, सत, असत, स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण, महाविष्णु, महाशून्य, संपूर्ण क्षर समष्टि अपने मूल 'सदव्याकृत' में लीन हो जाती हैं, वह महाप्रलय कहा जाता है ।

अक्षरब्रह्म अंतर्गत अव्याकृत ब्रह्म

(अक्षर ब्रह्म की विभूति-सूक्ष्म महा समष्टि)

क्षर पुरुष-महाशून्य से पर यह चतुष्पाद -अव्याकृत, सबलिक, केवल, और सत्स्वरूप (विभूति संयुक्त) कूटस्थ अक्षर पुरुष का देश है ।

यजुर्वेद में उल्लेख है-

एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायांश्च पुरुषः ।
पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।।

(यजुर्वेद 31-3)

अर्थात ये (आव्यकृत, सबलिक, केवल, सत्स्वरूप) इस पुरुष (कूटस्थ अक्षरब्रह्म) की महिमा विभूतिमात्र हैं, वास्तविक स्वरूप नहीं । अक्षर पुरुष तो इस महिमा वाले रूप से अति श्रेष्ठ है । सम्पूर्ण प्राणि-समूह इस पुरुष के चौथे पाद अव्याकृत में है । इसके (अक्षर के) शेष तीन पाद अखण्ड प्रकाशात्मक दिव्य धाम में स्थित हैं ।

पहला पाद अव्याकृत पुरुष के स्थूल (छुद्र प्रणव) स्वरूप है, जिसमें अनन्त क्षर पुरुष उदय और अस्त होते हैं, उन सबमें यह चेतन रूप से व्याप्त है ।

अव्याकृत पुरुष अपने चारों स्वरूपों-स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण सहित माया में अनेक प्रकार से बार-बार प्रविष्ट होता रहता है और जो शेष तीन पाद (सबलिक, केवल और सत्स्वरूप) हैं कूटस्थ अक्षर के अन्तः करण रूप से सदा सर्वदा प्रकाशित रहते हैं । वह अक्षर पुरुष की ही

महिमा है । अक्षरकृत लीलाओं के कारण रूप वृत्ति भेद होने से समझने के लिये ही इनके स्वरूप का पृथक्-पृथक् वर्णन किया गया है ।

शुद्ध प्रणव

अव्याकृत स्थूल में शुद्ध प्रणव का स्थान है, जिसे प्रणव ब्रह्म-ॐकार का धाम कहते हैं । यह प्रणव ब्रह्म अहंकार स्वरूप है । पाँच मुख, दश भुजायुक्त शुद्ध प्रणव अनन्त सूर्यों के तेज को तुच्छ करने वाले प्रकाशयुक्त अनुपम शोभा को धारण किया हुआ हैं । इसको 'ओमित्यक्षर' भी कहते हैं । अहंकार पुरुष के जितने नाम शास्त्रों में आये हैं, वे सब इसी के नाम हैं । अक्षर ब्रह्म के उन्मेष-निमेष काल में उदय-लय होने वाले असंख्य विश्वों का जीव स्वरूप चेतन यही है । यहीं से प्रत्येक विश्व के लिये जीवों का प्रदान होता है । प्रत्येक विश्व के प्रलय के पश्चात् भी जीवों के एकत्रित होने का प्रधान केन्द्र यही है । अनन्त जीवों को उत्पन्न कर पुनः अपने में समेट लेना, प्रणव ब्रह्म की शक्ति से ही संभव है । यथा-

असंख्य मूर्त्तयस्तस्य निष्पतन्ति शरीरतः ।

(मनुस्मृति12-15)

अर्थ- इस प्रणव के स्वरूप से असंख्य जीवों के स्वरूप निष्पन्न हुआ करते हैं । अनेक क्षर ज्योति स्वरूपों का लय भी इसी में आकर होता है ।

• प्रणव का ज्ञान-अज्ञान भेद से दो स्वरूप माने जाते हैं ।

अज्ञानमय प्रणव

यह मूलतः स्वप्न अवस्था का स्वरूप है एवं शून्य के शिर पर विराजमान है । इसमें असंख्य सूर्यों का-सा स्वतः प्रकाश है । यह स्वयं शुद्ध अहंकार रूप है और इसके साथ मनोरूपा रोधिनी शक्ति है, जो जगत के साधारण जीवों को प्रणव धाम से आगे जाने नहीं देती । यह पन्द्रह दिन तो साकार और पन्द्रह दिन निराकार रहती है । जब साकार (व्यक्त) होती है तब जगत का उदय होता है और जब निराकार होती है तब उसका अस्त हो जाता है ।

क्षर में नारायण के स्थूल स्वरूप के अन्तर्गत अष्टावरण के ऊपर नाद स्वभाव प्रणव ब्रह्म (ज्योति स्वरूप) का जो वर्णन हो आया है, वह इसी का प्रतिबिम्ब स्वरूप है । उसके जितने नाम बताये गये हैं, वस्तुतः वे सभी नाम इसी के हैं ।

ऋग्वेदो गार्हपत्यं च पृथिवी ब्रह्म एव च ।
आकारस्य शरीरं तु व्याख्यातं ब्रह्मवादिभिः ।।
यजुर्वेदोऽन्तरिक्ष च दक्षिणाग्निस्तथैव च ।
विष्णुश्च भगवान्देव उकारः परिकीर्तितः ।।
सामवेदस्तथा द्यौश्चाऽऽहवनीयस्तथैव च ।
ईश्वरः परमो देवो मकारः परिकीर्तितः ।।
अर्धमात्रा परा ज्ञेया तत ऊर्ध्व परात्परम् ।

(ब्रह्मविद्योपनिषद्)

अर्थः- ऋग्वेद, गार्हपत्य अग्नि, पृथिवी तत्व, ब्रह्मा देवता ये सब अकार मात्रा से माने गये हैं । यजुर्वेद, अन्तरिक्ष, दक्षिणाग्नि, विष्णु भगवान देव उकार मात्रा से हैं । सामवेद, द्यौ, आकाशस्थ द्युलोक, आहवनीय अग्नि, ईश्वर (शिव)

देवता मकार मात्रा से हैं तथा अर्धमात्रा, परावाणी रूप है । चन्द्राकार शून्य ब्रह्मविद्या रूप है । ऐसा लिखा है कि प्रणव और गायत्री के द्वारा सब प्राप्त होता है ।

अज्ञानमय अपर प्रणवाकाश के अन्दर तीन स्थान हैं–

1. शुद्ध स्थूल,
2. शुद्ध सूक्ष्म, और
3. शुद्ध कारण ।

1. शुद्ध स्थूल में आकार मात्रा, ऋग्वेद, ब्रह्मा देवता, ग्राहपत्याग्नि और पृथ्वी तत्त्व का सूक्ष्मतम रूप हैं ।
2. शुद्ध सूक्ष्म में उकार मात्रा, यजुर्वेद, विष्णु देवता, दक्षिणाग्नि और जलतत्त्व का सूक्ष्मतम रूप है ।
3. शुद्ध कारण में मकार मात्रा, सामवेद, रूद्र देवता, आहवनीय अग्नि और तेज तत्त्व का सूक्ष्मतम रूप है ।

उनसे पर प्रणव का ज्ञानमय कोश है, जिसमें दो स्थान हैं ।

1. शुद्ध महाकारण में अर्धमात्रा, गायत्री शक्ति, अथर्व वेद, ईश्वर देवता और वायु तत्त्व का सूक्ष्मतम रूप है ।
2. निर्मल चेतन में बिन्दु मात्रा, स्वरसंवेद, पुरुष देवता और आकाश तत्त्व का सूक्ष्मतम रूप है ।

ज्ञानशक्ति गायत्री

अपर प्रणव में माया का बीज है और पर प्रणव विशुद्ध चेतन है, जिसे निर्मल चेतन भी कहा जाता है । यही ज्ञानशक्ति गायत्री का स्थान है ।

अतएव इस गायत्री के स्थान की सर्व सामग्री निर्मल स्वरूप मानी गई है । यद्यपि यहाँ पर प्रणव का आधिपत्य है,

तथापि ज्ञान की विशेषता के कारण इसे गायत्री शक्ति का धाम कहते हैं । इस धाम की पर देवता गायत्री शक्ति मानी गयी है । यथा–

तदायुधधरा देवी गायत्री परदेवता ।
वेदाः सर्वे मूर्तिमन्तः शास्त्रणि विविधानि च ।।
स्मृतयश्च पुराणानि मूर्तिमन्ति वसन्ति हि ।
ये ब्रह्मविग्रहाः सन्ति गायत्री विग्रहाश्च ये ।।
व्याहृतीनां विग्रहाश्च ते नित्यं तत्र सन्ति हि ।

(देवी भा0 12–11–86–87)

अर्थात इस प्रणव धाम में पर देवता रूप से ज्ञानशक्ति गायत्री विराजमान है । जहाँ पर 'अनन्ता वै वेदा'' अनन्त मंत्रराशि वेद, असंख्य शब्दराशि शास्त्र, पुराण सब मूर्तिमन्त ज्ञानस्वरूप विद्यमान हैं । यहीं पर 'स्वसंवेद' और अथर्व वेद मूर्तिमन्त विराजमान है । जगत में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और अथर्व संहिता के नाम से प्रसिद्ध वेद संहिता भिन्न है । जहाँ का अथर्व वेद इन सब वेदों का परात्मस्वरूप है और स्वसंवेद तो तारतम्य ज्ञान का प्रकाशक होने से स्वयं ब्रह्ममुनियों के साथ ही आता है । यथा–

चारों वेदोंने यों कहा,
वेद अथर्वन् सबको सार ।
येही वेद कुली में आखर,
त्रिगुणको उतारे पार ।। (श्रीमुखवाणी)

आदि नारायण के स्थूल में जिस गायत्री शक्ति का वर्णन आया है, वह इस गायत्री का ही प्रतिबिम्ब ही है ।

इस गायत्री शक्ति का निर्मल चेतन स्थान संपूर्ण जीवों

का नीचे से प्रथम और ऊपर से अष्टम मुक्ति-स्थान है ।

पाँचों वेद यही पर अव्यक्त रूप से नित्य निवास करते हैं । यहीं से आदि नारायण के स्थूल (नाद स्वभाव में) होते हुए शेषशायी नारायण श्वास द्वारा जगत में स्थूल रूप से व्यक्त होते हैं ।

अव्याकृत के सूक्ष्मपाद में स्थित
काल निरंजन शक्ति

अव्याकृत के अन्तर्गत चतुर्थपाद-स्थूल में अवस्थित प्रणव ब्रह्म तथा गायत्री से पर सूक्ष्म (विद्यापाद) में काल निरंजन का स्थान है । शास्त्रों में निरंजन पुरुष, काल पुरुष काल निरंजन, काल भगवान्, निरंजन शक्ति, महाकाल, महारुद्र, महतत्त्व आदि नामों से इसी का उल्लेख है ।

अथर्व वेद में इसका विस्तृत वर्णन आता है । यथा-

काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम् ।
कालो हि सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः ।।

(अथर्ववेद)

कालः तपः विकर्ता च सर्वमन्यदकारणम् ।
नाशं विनाशमैश्वर्यं सुखं दुःखं भवावभौ ।।

(महाभारत. शा. पर्व)

अर्थात काल ही कर्ता है और यही बिगाड़ता है, यही विनाश करता है, सुख-दुःख और ऐश्वर्य सब इसी के द्वारा मिलते हैं । इसके सामने इसके सिवा किसी का बल नहीं चलता । यही काल विश्व में व्यापक है । अग्नि की भाँति सबको समेटकर

स्वयं भी अन्तर्हित हो जाता है । इसके अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत नाम के तीन स्वभाव हैं ।

1. अध्यात्म के साथ चौबीस हजार शक्ति सहित सुमना शक्ति रहती है ।
2. अधिदैव के साथ चौबीस हजार शक्तियों सहित विद्या और ब्रह्मविद्या नाम की दो शक्तियाँ रहती हैं ।
3. अधिभूत के साथ दस महाविद्या तथा चौबीस हजार शक्तियों के साथ ब्रह्माणी शक्ति है ।

इस प्रकार इस सूक्ष्म स्थान में बहत्तर हजार मूल शक्तियाँ हैं, इनमें से प्रत्येक के तीन-तीन स्वभाव हैं ।

अध्यात्म के साथ- इच्छा, क्रिया और ज्ञान ।

अधिदैव के साथ-आवरण, विक्षेप और काल ।

अधिभूत के साथ- असत, जड़ और दुःख ।

वे ही 72000 शक्तियाँ ब्रह्मांड के पिंडों में नाड़ी रूप से हैं । इन्हीं शक्तियों के प्रभाव से यह निरंजन शक्ति अति प्रबल-प्रचंड कही जाती है । असंख्य ब्रह्मांडों के जीवों को यह खा जाती है । अर्थात् सब जीव यहीं आकर लीन हो जाते हैं । इससे इसको महाकाल रूप कहते हैं । यह अनेक ब्रह्मांडों का नाश करती है, और अपने में समेट लेती है । असंख्य ब्रह्मांडों के जीवों का यही ब्रह्म है । महानारायण का सूक्ष्म-मोहतत्त्व इसी का प्रतिबिम्ब है । अतः जितने उसके नाम हैं, वे सभी वस्तुतः इसी के नाम हैं । इसका निज स्वरूप मन, वचन दृष्टि से परे है और अव्याकृत में यह अत्यन्त सूक्ष्म सुरता रूप है । यह अखंड के दरवाजे पर चौकी रूप है जो किसी अनधिकारी जीव को अखंड में प्रवेश होने नहीं देती ।

अक्षर की पंचवासनाओं का स्थान भी यही है । लीला भेद से इसमें भी चार स्थान हैं । यथा–

1. स्थूल में इसकी निज लीला है ।
2. सूक्ष्म में अधिभूत, अधिदैव और अध्यात्म इसकी लीला है ।
3. कारण में नित्य गोलोक (अखंड ब्रज) का प्रतिभास है ।
4. महाकारण में नित्य गोलोक (अखंडरास) की लीला का प्रतिभास है ।

अव्याकृत के कारण स्थित
सात महाशून्य

काल निरंजन से पर अव्याकृत के तृतीय पाद–कारण में सात महाशून्यों का विस्तार है । ये सात शून्य सात रंग के हैं । यहाँ पर वास्तवी, अनिर्वचनीय, तुच्छा, शिव–कल्याणी और उन्मुनी ये पाँच शक्तियाँ अधिष्ठात्री रूप से विराजमान है । प्रत्येक शून्यों में से अनेक प्रकार के स्वर उठा करते हैं । इनको माया और ब्रह्म दोनों नाम से लिखा है । ये कारण रूप से माया हैं और चेतन रूप से ब्रह्म कहे जाते हैं । जिस प्रकार आदिपुरुष के कारण में इच्छा शक्ति के दो रूप हैं–इहरूप मायाभाव और अनिह रूप ब्रह्मभाव । उसी प्रकार यहाँ पर इसके भी दो स्वरूप हैं । इच्छा शक्ति इसी का प्रतिबिम्ब स्वरूप माना है ।

ये सातों शून्य अखंड है । अप्रकाशित योगमाया तथा कालमाया जगत का बीजभूत कारण स्वरूप हैं । अजपा जप की गति यहीं तक है । महानारायण के स्थूल में जिन सात स्वरूपों (इन्द्र, धर्मराज, ब्रह्मा, विष्णु, शिव और ओंकार तथा गायत्री) का वर्णन हो आया है उन सबका यही बीज भूत जीव है ।

इस शून्य मंडल से कमल–तन्तु के सदृश चिदाभास की सूक्ष्म शिखा का एक सूत्र ऊपरी ओर चला गया है, जो महाकारण से मिला देता है । इस धाम से आगे जाने वाले मुक्त पुरुषों को यह पथप्रदर्शक बन जाता है । विश्व में जितने भी राग रंग प्रतीत होते हैं, उन सबका मूल केन्द्र यही है ।

इसे ऊपरी गिनने से आचार्यों की सातवीं मुक्ति कहते हैं । इति ।

अव्याकृत का महाकारण

(सबलिक का स्थूल)

पूर्व कथित सात महाशून्यों के मण्डल से पर यह अव्याकृत का महाकारण स्वरूप है, जो शबलिक ब्रह्म स्थूल भी कहा जाता है । लीला भेद से इसके महाकरण में चार स्थान हैं, शुद्ध स्थूल, शुद्ध सूक्ष्म, शुद्ध कारण तथा शुद्ध महाकारण ।

शुद्ध स्थूल-

परम प्रबल पाँच (ब्रह्म स्वरूपा व्यापिका, शिव स्वरूपा संहारिका, विधिशक्ति उद्गारिका, विष्णुशक्ति पालिका तथा सर्व कारणों की कारण रूपा सद्रूपा सुमंगला) शक्ति है एवं परम शिव, ब्रह्म शिव, सदा शिव, नाद शिव और शिव पांच शिव हैं। इनमें से चार शिव की चार पाटी और एक शिव का बुनाव तथा चार शक्तिओं के चार पाये हैं। इस प्रकार एक विशाल मंच कल्पित करके पांचवीं शक्ति सद्रूपा माया सर्व विश्वोत्पत्ति लय की मूल कारणभूता सुमंगला शक्ति उस पर विराजमान है।

सबलिक ब्रह्म के सूक्ष्म में चिदानंद लहरी का जो वर्णन हो चुका है, उसी का कार्यस्वरूप सुमंगला शक्ति है।

यह सुमंगला चिद्रूपाक्षर सबलिक ब्रह्म की सत्स्वभाव रूपिणी है, अर्थात् उनकी सुरतारूप एक महान विद्याशक्ति है। इसका मूलस्थान सबलिक के सूक्ष्म स्वरूप चिदानन्द लहरी में है परन्तु जब यह सर्ग-स्थिति-लयरूप विश्वोत्पादन कार्य में प्रवृत्त होती है, तो अव्याकृत पुरुष के इसी शुद्ध स्थूल में उपरोक्त प्रकार से सुमंगला नाम पड़ जाता है।

शुद्ध सूक्ष्म-

इसमें सत्स्वरूप की लीला है, यह चिद्रूपाक्षर सबलिक ब्रह्म के बाल स्वभाव का स्वरूप है। इस स्थान में चार द्वीपों का वर्णन मिलता है, जो अनेक आत्माओं के मुक्त होने के धाम हैं। चारों द्वीपों के नाम हैं- नित्य बैकुंठ, सतलोक, श्वेतद्वीप और पुष्करद्वीप। ये चारों द्वीप अव्याकृत के महाकारण

में नेत्र के समान्त प्रकाशित हैं ।

नित्य बैकुंठ–

राम के उपासक अपने इष्ट के धाम को साकेत धाम, सान्तानिक लोक, अखंड अयोध्या आदि नामों से संबोधित करते हैं ।

सतलोक–

कबीर पंथ के लोग इसको सतलोक, अमरलोक, हंसलोक, अलख पुरुष का धाम आदि नामों से जानते हैं ।

श्वेतद्वीप–

वैष्णवजन इसे श्वेतद्वीप, बैकुंठ धाम, विष्णु लोक आदि नामों से पुकारते हैं ।

पुष्करद्वीप–

पुष्करद्वीप में मुख्यतः पुरुष की लीला है और सत्पुरुष अधिष्ठित हैं ।

चारों द्वीपों में अलग–अलग प्रकार से सत्पुरुष की ही लीला होती है । सत्पुरुष को पर विष्णु भी कहते हैं ।

स्वमहिम्ना सर्वाल्लोकान्
सर्वान्देवान्सर्वानात्मनः ।
सर्वाणि भूतानि व्याप्नोति
व्यापयति इति विष्णु ।।

अर्थ– अपनी महिमा से सर्वत्र ओतप्रोत होकर जिसने इस

विश्व में सबको धारण किया है, जो सबको खिला रहा है, वही विष्णु है । जब विष्णु के विविध रूप हैं तो एक रूप श्वेत द्वीप में भी हो सकता है । यही कारण है कि विष्णु का एक रूप बैकुंठ है, दूसरा नारायण है और तीसरा यह अव्याकृत के महाकारण में मूल है । विष्णु की लीला इसके आगे नहीं है । राम के उपासकों का यही परमपद है ।

शुद्ध कारण–

यह सबलिक का चिदाभासमय नित्य बैकुंठ है । यहां पर अखंड ब्रजलीला का प्रतिभास पड़ता है । जिस ब्रजलीला को सबलिक ने अपने चिद में अखंड रूप से धारण किया है, उसी का यह प्रतिबिम्ब है, नन्द, यशोदा, गोप–गोपी; ग्वाल–बाल आदि सहित श्रीराधा कृष्ण की जो भी लीलाएँ हैं, वे सब यहाँ निरंतर प्रातिभासिक हैं । वेद ऋचाएँ जिनको उद्धव ने योगाभ्यास का उपदेश दिया था, वे यहीं पर आकर मुक्त हुई हैं । नरसी मेहता, बल्लभाचार्य, चैतन्य महाप्रभु आदि जितने भी ब्रजलीला के उपासक भक्त हैं, वे सब इसी स्थान पर आकर मुक्त होते हैं ।

रुक्मिणी के विवाह के समय माधवपुर में विष्णुरूप श्रीकृष्ण ने जो लक्ष्मीरूप रुक्मिणी को संकेत से ब्रज का दर्शन कराया था, वह यही ब्रज है । शिव, विष्णु, ब्रह्मादि देव इसी ब्रजबिहारी श्रीराधा कृष्ण की उपासना करते हैं । अन्त में इसी स्थान को प्राप्त होते हैं और यहीं उनकी परात्मा है । प्रणालिका में ऊपर से गिनने पर यह बैकुंठ की छठवीं मुक्ति होती है और नीचे से गिनने पर तीसरी ।

कार्यब्रह्म के लोक (बैकुंठादि) में सायुज्य मुक्ति पाने वाले, कार्यब्रह्म के नाश होने पर अपने-अपने इष्ट के साथ यहाँ पर प्राप्त हो अनन्त काल पर्यन्त मोक्ष सुख भोगते हैं ।

शुद्ध महाकारण –

अव्याकृत महाकारण में तुरीयपाद तथा तुरीयातीत दो भेदों का वर्णन श्रुति ग्रंथों में है । अव्याकृत के तुरीयपाद में ब्रजलीला का वर्णन हुआ, उसमें नित्य गोलोक धाम के प्रतिभास का आनंद अभिव्यक्त होता है । उपरोक्त ब्रजलीला से पर तुरीयातीत निर्मल चेतन में नित्य रासलीला का प्रतिभास है, फलस्वरूप इसको प्रातिभासिकी रासलीला कहा गया है । चिद्रूप सबलिक ब्रह्म ने अपनी बुद्धि में अखंड रूप से जो धारण किया है, उसका यह प्रतिभास है । यहाँ पर यह लीला सदा-सर्वदा निरंतर होती रहती है । वेदों ने यहीं पर रासलीला के दर्शन कर श्रीकृष्ण के साथ रास रमण करने हेतु स्तुति की थी, जिसको वेदस्तुति कहते हैं ।

नास्य ज्ञानं ब्रह्मसृष्टिं विना कस्यापि जायते ।
अक्षरब्रह्म हृदये वास्तवीं विद्धि शांकरे ।।
नित्यं वृन्दावने या च सा स्मृता प्रातिभासिकी ।
ब्रजभूम्यां च या लीला सा प्रोक्ता व्यावहारिकी ।।

(सदा शिव-सं.)

अर्थः- शिवजी पार्वती जी से कहते हैं 'हे गिरिजे ! रासलीला के त्रिविध रहस्य को सुनकर मनुष्य भवसागर को तर जाता है । परन्तु यह रहस्य जीवसृष्टि के हृदय में बड़ा सौभाग्य हो तो जमता है । इसे ब्रह्मसृष्टि ही ग्रहण कर जीवों को प्रदान कर

सकते हैं। अक्षरब्रह्म के हृदय में जो रासलीला अनादि काल से अखण्ड वर्तमान है, उसे वास्तवी रासलीला कहते हैं। नित्य वृन्दावन में जो रासलीला होती है, उसे प्रातिभासिकी कहते हैं। वास्तवी लीला का प्रतिभास होने से अन्वर्थक नाम प्रातिभासिकी है। इसे अन्य नामों से भी पुकारा जाता है। इस विश्व की ब्रज-भूमि में जो रासलीला हुई है, उसे व्यावहारिकी रास कहते हैं।

अव्याकृत का महाकारण

अव्याकृत के महाकारणगत उपरोक्त पुरुष-लीला, ब्रजलीला तथा रासलीला-तीनों ही लीलाओं का प्रतिबिम्ब आदिनारायण के महाकारण में ज्यों का त्यों पड़ा हुआ है। अन्तर केवल इतना है कि यहाँ की सब लीलायें नित्य हैं और आदिनारायण की लीलाएँ अनित्य हैं। जब तक आदिनारायण का अस्तित्त्व रहेगा तभी तक ये लीलाएँ रहेंगी, महाप्रलय के समय उनके साथ ही लय को प्राप्त होंगी।

अव्याकृत पुरुष साधारण जीवों को नितान्त अगम्य और दुर्लभ है। यह प्रकृति और मूल प्रकृति का प्रतिबिम्ब है; किन्तु चिद्रूपाक्षर सबलिक के पुरुषभाव का इसमें प्रतिभास होने के कारण इसे प्रकृति-पुरुष भी कहते हैं। सभी शास्त्र भिन्न-भिन्न नाम-रूपों से इस को ब्रह्म मानते हैं। जैसे- न्याय दर्शन आत्मरूप से, मीमांसा दर्शन कर्मरूप से, सांख्य दर्शन प्रकृति-पुरुष रूप से, योगदर्शन ज्योतिरूप से, वैशेषिक दर्शन कालरूप से और वेदान्त दर्शन वाले निर्गुण-निराकार रूप से मानते हैं। इसके अतिरिक्त मूलमाया, निजमाया,

महामाया तथा अजात्रिवर्णी आदि इसके अनेक नाम हैं । इसमें केवल नाम मात्र का अन्तर है, अन्यथा यह एक ही, तत्व विशेष अव्याकृत है । यह शुद्ध प्रणव से लेकर अपने चारों स्वरूपों का समष्टि रूप है । इसी को चिद्रूपाक्षर सबलिक ब्रह्म का स्थूल स्वरूप भी कहते हैं ।

सबलिक ब्रह्मः चिदानन्द लहरी

(सबलिक ब्रह्म का सूक्ष्मपाद-कारण महासमष्टि)

उपरोक्त अव्याकृत से आगे शबलिक ब्रह्म का सूक्ष्म स्थान है, जहाँ पर सुधासिंधु के मध्य कल्पवृक्षों से घिरे हुए मणिद्वीप में शिवाकार मंच पर चिदानन्दलहरी विराजमान है अर्थात् परम शिव, ब्रह्म शिव, सदा शिव, नाद शिव और शिव इन पाँचों शिव में से चार शिव की पाटी और परम शिव का आसन तथा चार शिव शक्तिओं के पाये और परम शिव शक्तिव्यापिका का बुनाव कल्पित कर प्रबल प्रताप लेकर उस पर चिदानन्द लहरी विराजमान है ।

सुधासिन्धोर्मध्ये सुपविटपवाटीपरिवृते ।
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे ।।
शिवाकारे मंचे परमशिवपर्यङ्कनिलयाम् ।
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम् ।।

(सौन्दर्य लहरी, शंकराचार्यिका)

पञ्च ब्रह्ममये मञ्चे शयानः पुरुषो महान् ।
महाविष्णुस्वरूपेण स्वप्ने ब्रह्माण्डमोक्षते ।। (पुराण. सं.)

वस्तुतः कूटस्थ अक्षर ब्रह्म के हृदयाकाश से उदित यही सुमंगला शक्ति है । चिद्रूपाक्षर के द्वारा रूपवती हो तथा

निद्रारूप विश्वोत्पत्ति लयादि कार्य में प्रवृत्त हो इसने अपने चमत्कार से चिद्रूपाक्षर को मोहित कर लिया है ।

जब यह सृष्टि कार्य में प्रवृत्त होती है, तब पूर्व कथित अव्याकृत के महाकारण में- शुद्ध स्थूल लोक में अपनी सर्व सामग्री के साथ आकर सद्रूपा माया (सुमंगला) नाम से विराजमान होती है । चिद्रूपाक्षर द्वारा प्रगट होने से इसको उनकी सुरता अथवा विद्याशक्ति कहते हैं । इसके साथ करोड़ों शक्तियों सहित सर्वकार्यदक्षा महाप्रबल शिवकल्याणी शक्ति है ।

चिद्रूपाक्षर सबलिक के चिदंश और आनन्द स्वरूप केवल ब्रह्म के आनन्दांश के संयुक्त स्वरूप को चिदानन्द लहरी कहते हैं ।

सबलिक ब्रह्म का कारण
नित्यगोलोक धाम (ब्रजलीला)

चिदानन्द लहरी से पर चिद्रूपाक्षर सबलिक ब्रह्म का कारण स्थान है । इसको शास्त्रों में माया के मस्तक रूप नित्य गोलोक कहा गया है । यहाँ पर साढ़े तीन करोड़ सखियों सहित श्री राधाकृष्ण की समस्त ब्रजलीला निरंतर होती रहती है ।

सम्पूर्ण विभूतियों के साथ चौरासी कोश ब्रजमण्डल, वन, पर्वत, यमुना, गोप, गोपी, गौ, ग्वाल-बाल, नन्द-यशोदादि जो भी सामग्री हैं, यहीं से मृत्युलोक में उतरी और

फिर यहीं पर आकर अखण्ड हो गयीं । इस लीला को कूटस्थ अक्षरब्रह्म ने अपने चित् अन्तःकरण में अखण्ड रूप से धारण किया है ।

द्विभुजं मुरलीहतं किशोरं गोपवेषिणम् ।
स्वेच्छामयं परंब्रह्म परिपूर्णतमं प्रभूम् ।।
ब्रह्माविष्णुशिवाद्यैश्च स्तुतं मुनिगणैर्नुतम् ।
निर्लिप्तं साक्षिरूपं च निर्गुणं प्रकृतेः परम् ।।

(देवी भा. 9,11)

अर्थः- इस गोलोक धाम में द्विभुज स्वरूप किशोरावस्था के श्रीकृष्ण जी मुरली हाथ में लिये हुए, इच्छामय रूप में विराजमान हैं । प्रकृति-अव्याकृत से पर श्रीकृष्ण के इस ब्रह्ममय स्वरूप को ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देव एवं महर्षिगण नमन किया करते हैं, तथापि जान नहीं पाते । क्योंकि यह स्वरूप निगुण, निर्लेप एवं साक्षीरूप से वर्तमान है ।

इस स्थान को ब्रज की पांचवीं मुक्ति कहते हैं । जो जीव तारतम्य ज्ञान के द्वारा इसको धारण कर चिन्तन करेंगे, वे अन्त में इसी पद को प्राप्त होंगे ।

सबलिक ब्रह्म का महाकारण
(महारास)

नित्य गोलोक से पर चिद्रूपाक्षर (सबलिक) का यह नित्य वृन्दावन स्वरूप महाकारण स्थान है, जिसमें महारास लीला अखंड वर्तमान है । अक्षरातीत श्रीकृष्ण परमात्मा ने केवल ब्रह्म के द्वारा अक्षर को ब्रह्मानंद रस का जो अनुभव कराया था, उसे अक्षर ने अपनी जाग्रत बुद्धि द्वारा सबलवृत्ति

के अन्तःकरण में धारण कर लिया । अतः वह सबल ब्रह्म के महाकारण में अखण्ड वर्तमान है ।

यद्यपि यह योगमाया के रासमण्डल का अनुरूप स्वरूप बाद में अखंड हुआ है, परन्तु इसके ब्रह्मानंद का महत्व केवल धाम की नित्य लीला से कहीं अधिक है । केवल धाम की लीला में लेशमात्र आनन्द का उदय रहता है परन्तु इसमें तो सदा ही पूर्णब्रह्मानन्द उदित है । पूर्णब्रह्म के आवेश द्वारा जो रास रचा गया था, वह अक्षरब्रह्म की इच्छा पूर्ण करने के लिये था । अतः उसमें पूर्ण ब्रह्मानन्द का उदय था । इसे अक्षर ने जागृत बुद्धि द्वारा धारण किया, अतएव इसका महत्त्व केवल के आनन्द से कहीं और अधिक बढ़ गया, क्योंकि वह पूर्ण ब्रह्मानन्द वास्तवी लीला का स्वरूप हो गया । अतः शास्त्र में उल्लेख है–

आनन्दरूपा सामग्री सर्वाऽखण्ड सुखात्मिका ।
न माया गुणसंसर्गः कदाचित्कुत्रचित्प्रिये ।।

श्री युगलदास जी महाराज ने इसी को रास की चौथी मुक्ति कही है, जो यथार्थ है । जीवों को वही मुक्ति प्रदान की जा सकती है, जो ब्रह्मसृष्टि के द्वारा ब्रह्मानन्द से पूर्ण बन चुकी हो ।

वृन्दावनाश्रया लीला साधुः सर्वत्र दुर्लभा ।
गुह्याद्गुह्यतमाऽगम्या नित्याक्षरहृदि स्थिता ।।

(पुराण सं.)

अर्थात् अक्षरब्रह्म के हृदयरूप सबलिकब्रह्म के महाकरण में अखण्ड वृंदावन में होने वाली रासलीला नित्य अखण्ड और सर्वथा दुर्लभ है । उसका रहस्य गूढ़ातिगूढ़ और दुष्प्राप्य है ।

पूर्णब्रह्म के संपूर्ण ऐश्वर्यों का जहाँ पर नित्य निरंतर उदय होता है, ऐसा सुन्दर धाम गुणों से परे होने के कारण सब प्रकार से दुर्लभ है। इसी नित्य सुखधाम में युगल स्वरूप (श्री राधाकृष्ण) स्वरूप निरन्तर क्रीड़ा करते हैं। इस प्रकार वृन्दावन की रासलीला को सबने उत्तम माना है। जब रासलीला वास्तवी रूप में अखण्ड हो गई, उसे जितना भी महत्त्व दिया जाय, कम है।

सबलिक ब्रह्म का निर्मल चेतन

सबलिक ब्रह्म का निर्मल चैतन्य व चिद्रूपाक्षर (सबलिक) का जो मुख्य धाम है, वह कूटस्थ अक्षर ब्रह्म का प्रतिभास है।

यहां पर सबलिक ब्रह्म अनन्त शक्तियों से सहित विराजमान हैं। उनकी अर्धाङ्गिनी लक्ष्मीजी और अवस्था बाल है।

सबलिक ब्रह्म कूटस्थ अक्षरब्रह्म के चिदंश का कोटिशः भाग का स्वरूप है, इस तरह केवल ब्रह्म अक्षरातीत के आनन्दांश स्वरूप है। दोनों का धाम एक ही भूमिका में आमने-सामने विराजमान है। केवल ब्रह्म का धाम पूर्वाभिमुख है, और सबलिक ब्रह्म का धाम पश्चिमाभिमुख है, मध्य में श्री यमुना जी महारानी दोनों तरफ से साढ़े चार लाख कोश के अन्तर से अखंड बह रही हैं। जिस तरह परमधाम में अक्षरब्रह्म नित्य सर्वातीत स्वरूप अक्षरातीत श्रीराजजी के दर्शनार्थ जाते हैं, इसी तरह सबलिक ब्रह्म भी नित्य केवल ब्रह्म के दर्शन को जाते हैं।

इनकी ऐसी महिमा है कि इनके नेत्र-भ्रमण मात्र से

असत्–जड़–दुःखात्मक असंख्य ब्रह्माण्ड उत्पन्न होकर लय हो जाते हैं; जिनमें असंख्य ब्रह्मा, विष्णु, शिव, शेष, गणेश, देवी, देवता, काली, महाकाली, अवतार, तीर्थंकर, दानव, मानव आदि चारों खान के जीव अनन्त बार अपनी–अपनी पूर्णायु भोगकर विनष्ट हो जाते हैं ।

श्रीकृष्ण जी के तृतीय श्याम स्वरूप का मुक्ति स्थान यहाँ पर है ।

विशेष विस्तार जानने के लिये श्री 'विराट दर्शन' ग्रंथ देखना चाहिये ।

तिन ऊपर कारण में नित्य गोलोक है ।
तिन आगे महाकारणमें रहस्य अनूप है ।।
तिन आगे चिद में तृतीय कृष्णको रूप है ।

(श्रीयुगलदासजी–श्रीविराटपट दर्शन)

केवल ब्रह्म

(ब्रह्मानंद लीला का अंश)

सबलिक (चिद्रूपाक्षर) से परे केवल ब्रह्म का धाम है । सबलिक और केवल दोनों एक लोक हैं, तथापि लीला भेद से दो स्थानों के रूप में प्रदर्शित हैं । जिस प्रकार अक्षरधाम और परमधाम की दूरी है उसी प्रकार सबलिक धाम से साढ़े चार लाख कोश की दूरी पर श्री यमुनाजी स्थित हैं तथा यमुनाजी से साढ़े चार लाख कोश की दूरी पर केवलधाम है ।

एक करोड़ कोश विस्तृत अमृत के सागर के मध्य में पचास लाख कोश का एक महा प्रकाशमान द्वीप है, जिसमें नव प्रकाश के नव रंगों के नव खंड हैं । आठ खंड आठ दिशाओं में और नवमा खंड केवल धाम मध्य में है । यही केवल लोक की राजधानी है ।

इसकी ऊपर–नीचे दस रंग की दस भूमिकाएँ हैं । यह राजमहल पहलयुक्त (गोल) एक भोम ऊँचे चबूतरे पर स्थित है । महल के अन्दर मध्य भाग में एक चौसठ स्तम्भों का चबूतरा है । उस चबूतरे के ऊपर मध्य में रत्नजटित स्वर्ण–सिंहासन है । उसके ऊपर अपनी आनंद अंग योगमाया स्वामिनी के साथ केवल ब्रह्म विराजमान हैं ।

'रसो वै सः, ब्रह्म वै रसः'
तस्मादेकाकी न रमते सः । (वृह. 1–4–3)
स एवात्मा द्विधा भवति पतिश्च पत्नी च । (श्रुति)
आनन्दरूपा सामग्री सर्वाऽखंडसुखात्मिका ।
न माया गुणसंसर्गः कदाचित्कुत्रचित् प्रिये !

द्रवीभूतः प्रियाधरः प्रियाभावात्मके रसम् ।
प्राधान्यं तत्र नेच्छन्ति घनीभूतादपि प्रिये !

(माहेश्वरतंत्र)

केवल रसरूप ब्रह्म होने के कारण केवलब्रह्म कहा जाता है । द्रवीभूत और घनीभूत दोनों भावों में रसरूप ब्रह्म ही सर्वत्र व्याप्त है । केवल धाम के यावत् पदार्थ आनंद स्वरूप हैं ।

वहाँ पर सभी कुछ रसरूप है । इसलिये धाम का नाम केवलधाम और ब्रह्म का नाम केवलब्रह्म है । यहाँ पर नव रसों की नौ भूमिकाएँ अपने स्थायी भावों से परिपूर्ण हैं । विभाव, अनुभाव और स्थायी भाव के रूप में सर्वत्र आनन्द ही अभिव्यक्त हो रहा है ।

यद्यपि केवल धाम में ब्रह्मानन्द लीला का ही रस है, तथापि यह पूर्णब्रह्म परमात्मा के करोड़ों अंश का अंशमात्र है । इसलिये रसानन्द लीला को ही नवखंड़ों में नवरस के रूप में वर्णित किया गया है । जिस खंड में जायें उसी रस का आनंद मिलता है । आनंद योगमाया इनकी शक्ति है । आनंद योगमाया के कारण नित्य वृन्दावन में अखंड महारास की लीला स्वतंत्र रूप से वर्तमान है–

घरथी तीत ब्रह्मांडथी अलागो ।
ते तारतमे कीधो निरधार ।। (श्रीमुखवाणी)

श्री कृष्णजी ने योगमाया का आश्रय लेकर जो महारास किया है, वह स्वतंत्र रूप से इस अलग ब्रह्मांड में किया है । उसका लय भी लिखा है । जहाँ आधी निद्रा और आधी जागृतावस्था थी, वह अक्षर के हृदयाकाश में अखंड हुई है जिसे कूटस्थ अक्षर ब्रह्म ने अपनी जाग्रत बुद्धि में धारण किया

है । कुछ ज्ञानीजन इसे रास की तीसरी मुक्ति का स्थान बताते हैं ।

रास की तीसरी मुक्ति स्थान का सबलिक के निर्मल चेतन में भी वर्णन किया है । सबलिक–केवल एक ही ब्रह्मांड में एक स्वरूप हैं (स्वरूप एक है लीला दोय) अतः मुक्ति स्थान में अधिक भेद नहीं है, अतः इसमें कोई संदेह नहीं किया जाना चाहिए । अधिक जानकारी के लिये 'विराटपट दर्शन' ग्रंथ देखिये ।

सत्स्वरूप

(अक्षर ब्रह्म के मन का स्वरूप)

केवल ब्रह्म के धाम से पर चतुष्पाद विभूति का तुरीयपाद सत्स्वरूप कहते हैं । इसको मूल प्रकृति, इच्छाशक्ति, अचिन्त्य शक्ति या कूटस्थ अक्षर ब्रह्म के मन का स्वरूप 'कारण अक्षर' कहते हैं । सबलिक के सूक्ष्म में चिदानन्द लहरी का जो वर्णन हुआ है, वह इसी मूल प्रकृति का प्रतिनिधि स्वरूप है ।

सत्स्वरूप के पांच स्थान हैं–स्थूल स्थान अव्याकृत, सूक्ष्म स्थान सबलिक, कारण स्थान केवल, महाकारण स्थान मूल प्रकृति और निर्मल चेतन मन स्वरूप स्वयं सत्स्वरूप हैं ।

अव्याकृत में सर्वत्र सदंश की विशेषता का विस्तार है, अतः उसे सद्रूपा प्रकृति कहा जाता है ।

सबलिक चिदंश प्रधान होने के कारण इसे चिद्रूपाक्षर कहा जाता है । केवल में आनन्द प्रधान है, अतः यहाँ पर

आनन्दांश की लीलाएँ होती हैं । केवल धाम के यावत् पदार्थ आनन्द स्वरूप हैं ।

सत्स्वरूप में सदंश, चिदंश और आनन्दांश तीनों की सामरसता है । तीनों ही धर्म प्रधान रूप से विद्यमान होने के कारण उसमें त्रिविध भावों का सदा उदय रहता है । यही कारण है कि सत्स्वरूप का आनंद उत्तरोत्तर सभी विभूतिपादों से विशेष और विलक्षण है । इसको ही विलास की सूरत कहते हैं । इसमें व्याप्त-व्यापक दोनों भावों का उदय है । व्यापक भाव से चारों विभूति पादों में प्रकाशित है और व्याप्त भाव से स्वरूप में उदीयमान है ।

सत्स्वरूप के महाकारण (मूल प्रकृति) में कुमारिकाओं (ईश्वरी सृष्टि) का दूसरा मुक्तिस्थान है । कूटस्थ अक्षर ब्रह्म की सुरताओं को कुमारिका कहते हैं । अक्षर की सुरताओं ने सखी रूप होकर खेल में अक्षरातीत के आनन्द का अनुभव किया था । इनकी संख्या चौबीस हजार मानी गई है । जगत के बीच जिन-जिन पवित्रात्माओं का आश्रय लेकर इन सूरताओं ने, असत्य, जड़, दुःख का नाटक देखा है, वे सब जीव प्रतिबिम्ब रूप से यहीं पर एकत्र रहेंगे और समष्टि रूप से सत्स्वरूप धारण करके नित्यानन्द का साक्षात् अनुभव करेंगे ।

य यं जीवमधिष्ठाय चिदाभासमयं मुने ।
वासनावासितं कृत्वा वासनाः स्वगृहं यदा ।।
गमिष्यन्ति तदा ते ते चिदाभासमया अपि ।
आनन्दावरणव्याप्तं गोलोकाच्च परं पदम् ।।

(पुराण संहिता)

अर्थः- व्यास जी को मुक्ति के स्वरूप का वर्णन करते हुये भगवान शिवजी कहते हैं कि जिन-जिन जीवों को अधिष्ठान बनाकर ब्रह्म वासनाओं ने इस खेल को देखा है अथवा जो साथ में रहे हैं, वे सब जीव भी ब्रह्म वासनाओं के ब्रह्मधाम चले जाने पर, आनन्द से पूर्ण उस परमपद को प्राप्त होंगे, जो गोलोक से भी परे है ।

इससे परे निर्मल चेतन का स्थान है । यहीं ब्रह्मसृष्टिओं का प्रातिभासिक प्रथम दर्जे का मुक्तिस्थान है जिसको श्रीमुखवाणी में नीचे से गिनने पर आठमीं मुक्ति बतायी है । कुमारिकाओं की भाँति जिन-जिन पवित्र जीवात्माओं को अपना-अपना अधिष्ठान बनाकर ब्रह्मसृष्टियों की सुरताओं ने माया का नाटक देखा और अपना मनोरथ पूर्ण किया, वे सभी जीव सत्स्वरूप में लीन होकर प्रतिबिम्ब रूप से प्राप्त हो यहीं पर नित्य परमानन्द का अनुभव करेंगे । इनके अतिरिक्त और जो भी जगज्जीव चित शुद्ध हो तारतम्य ज्ञान से प्रबुद्ध (जाग्रत) होकर ब्रह्मसृष्टियों के से आचरण करेंगे वे सब अखंड में यथाक्रम मुक्ति प्राप्त करेंगे ।

जो कदी जीवे संग कियो,
ताको मेलो न करूं भंग ।
रंगे भेलूँ वासना,
वासना सत को अंग ।। (श्रीमुखवाणी)
ब्रह्मसृष्टिको ऐसो नूर,
जो दुनिया थी बिना अंकूर ।
ताये नये अंकूर जो कर,
किये नेहचल देख नजर ।। (श्रीमुखवाणी)

जो जीव इन मुक्तियों को प्राप्त होंगे, उनके स्वरूप यहाँ पर सत्य के होंगे, अर्थात् वे सत्स्वरूप हो जायेंगे । उनके सम्पूर्ण महल, मन्दिर, बाग-बगीचे, वस्त्र-आभूषण, शय्या-सिंहासन आदि तथा सम्पूर्ण प्रकार के भोग्य पदार्थ सत्स्वरूपी दिव्य लोकमय होंगे । यह सर्वफलदायक स्थान है । यहाँ जिसने भी जिस वस्तु की इच्छा की, वह उसी क्षण प्राप्त हो जाती है । इसप्रकार वे जीव अजर-अमर ज्ञानमय सस्वरूप होकर श्याम-श्यामाजी तथा ब्रह्मसृष्टियों के नित्य नूतन दर्शन सत्संग से परम आनन्दमय सुधा-समुद्र में निमग्न रहेंगे ।

जो विष्णुरूप कृष्ण के भक्त हैं अथवा गोलोकवासी कृष्ण के भक्त हैं, वे इस तत्त्व को जान नहीं पाते क्योंकि अपने इष्ट से परे और भी कुछ है, ऐसी कल्पना ही नहीं करते हैं । अतः वे इस परम तत्त्व से वंचित रह जाते हैं ।

इस सत्स्वरूप की विस्तृत जानकारी के लिये 'विराटपट दर्शन' ग्रन्थ का अवश्य अध्ययन करना चाहिये ।

अब तक जो आठ प्रकार की मुक्तियों का वर्णन किया गया है, वे सभी मुक्तियाँ छायात्मिकाएँ एवं जीवसृष्टियों को पाने के लिये हैं । परन्तु इनसे भिन्न दो महामुक्तियाँ और हैं, जिनका वर्णन अब आगे किया जाता है । वे वास्तविक (भावात्मिकाएँ) हैं, एवं तत्संबन्धी सुख-भोगादि सभी पदार्थ वास्तविक हैं अर्थात् ईश्वरी तथा ब्रह्मसृष्टियों के ब्रह्मधाम-परमधाम का वर्णन किया जायेगा ।

कूटस्थ अक्षरब्रह्म

(नित्य महासमष्टि)

वेद, शास्त्र, पुराण तथा उपनिषदों का अध्ययन एवं अनुशीलन करने वाले एवं अध्यात्म तत्त्व की पृष्ठ-भूमि पर विचरने वाले मनीषी ब्रह्मविद् महापुरुषों के ब्रह्मज्ञान के समक्ष यह अज्ञात नहीं है कि असंख्य ब्रह्माण्डों का उदय-लय अथवा उत्पत्ति विनाश जो कुछ भी होता हैं- सबका कारण एकमात्र अविनाशी अक्षरब्रह्म ही हैं ।

अक्षरब्रह्म पूर्णब्रह्म अक्षरातीत के अंगभूत (सदंश) होते हुये भी अनादि एवं स्वयंसिद्ध हैं । अतः इनको भी, ब्रह्म, परब्रह्म, शुद्धब्रह्म आदि नामों से पुकारा जाता है । इनकी समस्त लीलाएं बालोचित हैं । अक्षरब्रह्म चौबीस हजार कुमारिकाओं सहित श्री लक्ष्मीजी के साथ नित्य नूतन बाललीला करते हैं । इनके सत्स्वरूप, केवल तथा सबलिक तीन स्वभाव हैं ।

सत्स्वरूप (मनःस्वरूप इच्छा के उदय होने पर) सबलिक स्वभाव चिद्रपाक्षर के द्वारा एक पल के विक्षेप में अंहकार रूप अव्याकृत भूमिका में असंख्य असत्-जड़-दुःखात्मक जगल्लीलाका का अवलोकन करते हैं । बुद्धिरूप केवल स्वभाव के द्वारा आनंद स्वरूपा योगमाया के कारण भूमिका में श्री पूर्णब्रह्म युगल स्वरूप श्री राजश्यामाजी की किशोर लीला का अहर्निश मनन करते हैं ।

अक्षरब्रह्म प्रतिदिन प्रातः प्रथम प्रहर की समाप्ति पर अपने मूलस्वरूप श्री अक्षरातीत के दर्शन हेतु आते हैं । परमधाम

अक्षरधाम से नौ लाख कोश की दूरी पर है ।

पाताल से लेकर सत्स्वरूप का जिन-जिन स्थान तथा स्वरूपों का वर्णन हुआ है अथवा जिन चार महासमष्टियों की व्यवस्था का वर्णन किया गया है, उन सबका यह नित्य समष्टि है ।

यहाँ कभी परिर्वतन नहीं होता, इसलिये इन्हें अनादि एवं स्वयंसिद्ध सदा-सर्वदा एक रस और परिपूर्ण कहते हैं ।

यह दृश्यादृश्य संपूर्ण जगत इनके अन्तःकरण के विलास वृत्ति का ही विकारी स्वरूप है । अतः उस वृत्ति करके ये उत्पादान कारण हैं और स्वेच्छासामर्थ्य से निमित्त कारण हैं । इसलिये इन्हें जगत का निमित्तोपादान कारण कहा गया है । अक्षरब्रह्म को पूर्णतया जाने बिना जो कुछ भी यज्ञ, जप, तप किया जाता है, वह सब तुच्छ है ।

राजा जनक के दरबार में अक्षर ब्रह्म को यथार्थतया जानने के लिये विवाद हुआ था, उस समय महर्षि याज्ञवल्क्य से ब्रह्मवादिनी गार्गी ने प्रश्न किया था । उसका उत्तर देते हुए महर्षि ने कहा-

अथ हैनं गार्गी वाचक्नवी पप्रच्छ याज्ञवल्क्येति हो वाच यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्मिल्लोके जुहोति यजते तपस्तप्ते बहूति वर्षसहस्त्राण्यन्तवदेवास्य तद्भवति । (वृहदारण्य उपनिषद)

हे गार्गी ! लाखों वर्ष पर्यन्त भले यज्ञ-याग, जप, तप, भजन, पूजन, सेवा, साधना सब करते रहो, परन्तु अक्षरब्रह्म के शुद्ध रचनारूप को जाने बिना वे सब तुच्छ हो जाते हैं । उपरोक्त सबका फल अन्ततः नश्वर ही होता है, और वे सब (यज्ञ, याग, जप, तप, भजन, पूजनादि) पुनः पुनः जन्म-

मरण (आवागमन) के कारण बने रहते हैं ।

यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्माल्लोकात्प्रैति स कृपणोऽथ य एतदक्षरं गार्गी ! विदित्वाऽस्माल्लोकात् प्रैति स ब्राह्मणः ।। (वृहदारण्य उपनिषद)

अर्थ– हे गार्गी ! जो (कोई) पुरुष इस अविनाशी अक्षरब्रह्म के स्वरूप को जाने बिना ही इस मृत्युलोक से चला जाता है, वह कृपण है अर्थात उसका जीवन ही व्यर्थ गया और वह कुछ भी प्राप्त नहीं कर पाया; और जो तत्त्वदर्शी पुरुष इस अक्षर ब्रह्म के स्वरूप को यथार्थतया जान कर इस मृत्युलोक से जाता है, वह ब्राह्मण है अर्थात् वही धाम को प्राप्त करता है एवं ज्ञानी होने के कारण उसी का जीवन सफल है ।

अक्षरब्रह्म की अगाध महिमा और अगाध सामर्थ्य है । तदपि वे अक्षरातीत पूर्णब्रह्म के एक किरण मात्र माने गए हैं ।

अक्षरब्रह्म का धाम, परमधाम से पूर्व में नौ लाख कोश की दूरी पर है । बीच में यमुना जी बहती है । अक्षर ब्रह्म के महल के चारों दिशा में चार सुदीर्घ द्वार हैं और प्रत्येक के अग्रभाग में विशाल एवं अत्यन्त मनोहर चाँदनी चौक है, उसके सामने सात प्रकार के सात वन हैं –केल, नींबू, अनार, अमृत, जामुन, नारंगी और वट । इन्हीं वनों के नाम से यमुना जी के तट पर सात घाट शोभित हैं । इस घाट समूह की बाँयीं ओर वट का पुल है और दाहिनी ओर केल का पुल है । अक्षरब्रह्म इसी वट के पुल से होकर नित्य श्रीनिजधाम में श्री राजश्यामाजी के दर्शन हेतु जाते हैं और केल के पुल से होकर वापस आते हैं ।

इस धाम के यावत् पदार्थ आत्मस्वरूप और चेतन हैं । यहाँ के सम्पूर्ण पदार्थ सत्–चिद आनन्दमय प्रेम स्वरूपी हैं ।

यही धाम कुमारिका-ईश्वरी सृष्टि (अक्षरब्रह्म की सुरताओं) का वास्तविक मुक्तिस्थान है । अक्षरब्रह्म को शास्त्रों में कूटस्थ अक्षर, महाकारण, अजर, मूल अक्षर तथा कर्ता धर्ता, तथा पूर्णब्रह्म परमात्मा करके भी कहा है । किन्तु तारतम्य ज्ञान के बिना संसार में इनका वास्तविक लक्ष्य अगम्य है ।

अक्षरब्रह्म का नाम जान लेने मात्र से वास्तविक लाभ प्राप्त नहीं होता है । यह पद महान महत्त्वशाली है, इनका वास्तविक स्वरूप तारतम्य ज्ञान द्वारा ही जाना जाता है, अन्य कोई उपाय नहीं है ।

अक्षरब्रह्म के संपूर्ण ज्ञान के लिये 'विराट पटदर्शन' ग्रन्थ अवश्य देखिए ।

अतः जगज्जीवों की दृष्टि यहाँ तक न पहुँचकर शून्य, बैकुंठ, निराकार, निरंजन नारायण, प्रणव तक ही पहुँच पाती है । कोई विरला योगी महर्षि अव्याकृत, पुरुष प्रकृति, सबलिक, केवल तक ही पहुँच पाते हैं । अक्षर और अक्षरातीत तक तो ईश्वरी सृष्टि तथा ब्रह्मसृष्टि ही पहुँच सकती हैं ।

■

श्री अक्षरातीत पूर्णब्रह्म श्री राजजी का
दिव्य परमधाम

यत्र ज्योतिरजत्रं यस्मिल्लोके स्वर्हितम् ।
तस्मिन्मां धेहि पवमानामृतेलोके अक्षिते ।। (ऋग्वेद)

अर्थः- अक्षरब्रह्म से भी परे अक्षरातीत सच्चिदानन्द स्वरूप परब्रह्म परमात्मा के निज स्वरूप का रहस्य तथा अपरंपार शोभा से परिपूर्ण स्वयंसिद्ध प्रकाश स्वरूप परब्रह्म धाम, जिसे 'दिव्य ब्रह्मपुर' 'परमधाम' आदि नामों से संकेत किया गया है, का दिग्दर्शन मात्र कराते हैं । उस धाम एवं ब्रह्म के विषय में कहा गया है-

पूर्णमदः पूर्णामिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।

जिस प्रकार परब्रह्म, परमात्मा पूर्णात्पूर्ण, परात्पर, सच्चिदानन्द स्वरूप, अनन्तस्वलीलाऽद्वैत, सदा सर्वदा चैतन्य, दिव्य प्रकाशपुञ्ज, अनन्त एकरस, सर्वोत्कृष्ट, सर्वाध्यक्ष, सर्वाश्रयभूत, स्वयंसिद्ध, निरपेक्ष हैं, उसी प्रकार परमात्मा का दिव्य परमधाम भी सदा सर्वदा एकरस, स्वयंसिद्ध, सर्वशोभा योग्य सर्वरस से परिपूर्ण, नित्य चैतन्य, सनातन सामग्री सम्पन्न एवं सर्व प्रकार के आनंद से भरपूर चिद्घन स्वरूप में अवस्थित है । अतएव वहाँ पर किसी प्रकार का विकार नहीं है ।

परमधाम- सत्, चित्, आनन्द, अनन्त और अद्वैत, इन पाँच भावों से परिपूर्ण होने के कारण वहाँ के वृक्षादि सभी वस्तु जड़ संज्ञा वाले होते हुये भी सदा चेतन हैं, ब्रह्म स्वरूप

हैं एवं सदा ब्रह्मानंद लीलारस में निमग्न हैं । परमधाम के प्रत्येक वृक्ष में सर्व प्रकार के फल, फूल, सब प्रकार की शोभा और सुगंधियुक्त होकर समष्टि–व्यष्टि रूप से स्थित हैं । वहाँ सभी ऋतुएँ सदा वर्तमान हैं । श्रीमुखवाणी में कहा गया है–

ऋतु से लीला ना लगी,
लीला से ऋतु जान ।
जब जैसा लीला जहां,
तैसी ऋतु परमान ।।

श्री अक्षरातीत परमात्मा को अनन्त नामों से पुकारा जाता है । जैसे पूर्णब्रह्म, अक्षरातीत, परब्रह्म, शब्दातीत, सर्वातीत, अखंडानन्द, पुरुषोत्तम, सच्चिदानन्द, श्रीराधाकृष्ण श्रीराज श्रीश्यामाजी, श्रीश्यामश्यामा, युगलकिशोर धामधनी इत्यादि ।

श्री अक्षरातीत पुरुषोत्तम श्री राजजी महाराज अपने परमधाम में द्वादस सहस्त्र सखीगणों सहित अपने आनंद स्वरूपा आह्लादिनी शक्ति श्री श्यामाजी महारानी के साथ नित्य–नूतन लीलाएँ किया करते हैं । इनकी किशोर लीला है ।

यहाँ के यावत पदार्थ वन, पशु, पक्षी, आकाश, चंद्र, सूर्य, तारागण, समुद्र, नदी, पहाड़, महल, जड़–चेतन आदि जो कुछ भी है, सब परमात्मा के अंग का अंशांश विस्तार है, सब सच्चिदानन्दमय, प्रेम स्वरूप, प्रकाश स्वरूप, आनंद स्वरूप, सत्य स्वरूप होकर दिव्य रसों का महासमुद्र है । यह प्रत्येक दशा में शुद्ध साकार एवं स्वलीलाद्वैत स्वरूप है ।

ब्रह्मसृष्टियों की स्वयं आत्मायें जगत में खेल देखने नहीं आई । श्री राजजी ने अपनी सखियों की परात्म को तो

वहीं पर मूल मिलावे में छिपा रखा है । उनके बदले में सत्स्वरूप के चैतन को ब्रह्मसृष्टि के प्रतिबिम्ब स्वरूप के द्वारा प्रकट कर स्वप्न द्वारा खेल दिखलाया है । माया के दुःख-सुख का अनुभव मूल ब्रह्मसृष्टियों के स्वरूप में करवाया है । ब्रह्मसृष्टिओं को अभूतपूर्व घटना द्वारा खेल दिखलाया है, ताकि खेल भी देखें और कलंक भी न लगे ।

जिन जगज्जीवों पर ब्रह्मसृष्टि की सुरताओं का अधिष्ठान हुआ, उन आत्माओं को सत्स्वरूप के निर्मल चेतन में मुक्ति प्राप्त हुई तथा ब्रह्मसृष्टिओं की सुरताएँ मूल स्वरूप में जाग्रत हुईं, इसी को ब्रह्मसृष्टियों की मुक्ति कहते हैं । अर्थात् ब्रह्मसृष्टियों की सुरता (ध्यान) का सम्बन्ध जब तक जगत से है तब तक वे बद्धावस्था में हैं और जब अपने वास्तविक अवस्था को प्राप्त होती हैं तब उन्हें मुक्त आत्मा कहते हैं । ईश्वरी सृष्टि की भी मुक्ति इसी तरह मानी गई है । अक्षरब्रह्म ने अपनी सुरताओं को स्वयं में समेट लिया । इसप्रकार ईश्वरी सृष्टि की भी मुक्ति हुई ।

पूर्णब्रह्म की महत्ता :

पूर्णब्रह्म परमात्मा की महत्ता अपरम्पार है, उनकी शोभा शब्दातीत है, तथापि आत्मा के संतोष के लिए स्वल्प वर्णन किया गया है । क्योंकि-

अपार अपार करी जो कहे,
तो आवे नहिं बुध माहें ।
तो गिनती करके सबे,
कही धनी ने आंहे ।। (नवरंग)

दिव्य परमधाम के आनंद के महासागर की गणना करना असंभव है, उस महासागर से एक अणु मात्र जल उड़कर नित्य वृन्दावन (केवल धाम) में जाकर एक आनंद का महासागर बन गया । उस आनंद सागर से एक अणु (जलकण) उड़कर नित्य गोलोक (सबलिक) में जाकर महासागर बन गया । वहाँ से एक अणु के समान जल उड़कर अव्याकृत में पहुँचा और उससे वहाँ आनंद का महासमुद्र बन गया । उस स्थान से अणु के समान जलबिन्दु का प्रतिभास (खास जल नहीं) महा नारायण में गया । इस क्रमानुसार वहाँ भी महासागर बना । पुनः वहाँ से जलकण उड़ा जिसका समुद्र स्वर्ग में बन गया । स्वर्ग से उड़कर मृत्युलोक में आ पहुँचा । मृत्युलोक में आकर वह जलकण सार्वभौम सुख के रूप में महासागर रूप हो गया । यह विचारणीय बात है कि अब हमारे हिस्से में कितना आनंद आया है ।

इस प्रकार पूर्णब्रह्म परमात्मा की एक कला स्वरूप कूटस्थ अक्षरब्रह्म हैं । उनकी एक कला स्वरूप केवल ब्रह्म हैं । केवल की एक कला के स्वरूप सबलिक, सबलिक की एक कला अव्याकृत, अव्याकृत की एक कला शुद्ध प्रणव, उसकी एक कला का प्रतिभास स्वरूप आदिनारायण और उनकी एक कला शेषशायी नारायण तथा विष्णु हैं । उनकी कला–कलांश से विराट एवं समस्त जगत के प्राणी हैं । इस प्रकार यह समस्त संसार कला कलांश द्वारा परमधाम और परमात्मा का ही विस्तार है और इन सबका सर्वातीत महाकारण एक अद्वैत परमात्मा हैं ।

परमधाम का संक्षिप्त वर्णन

अक्षरधाम से पर साढ़े चार लाख कोश की दूरी पर श्री यमुनाजी प्रवाहित हो रही हैं, श्री यमुना जी के दोनों किनारे पर सात घाट हैं और सात घाटों के दायें-बाँये दो पुल हैं। मध्य का घाट अमृत घाट (पाट घाट) के नाम से जाना जाता है।

श्री अक्षरातीत पूर्णब्रह्म का धाम और अक्षरब्रह्म का धाम आमने सामने शोभायमान हैं। दोनों धामों के बीच में साढ़े चार लाख कोश की दूरी पर श्री यमुनाजी हैं।

श्री अक्षरातीत का परमधाम पश्चिम तरफ पूर्वाभिमुख है और अक्षरब्रह्म का धाम पूर्व की ओर पश्चिमाभिमुख है।

दोनों धाम की तरफ यमुनाजी के किनारे पर केला, नींबू, अनार, अमृत, जामुन, नारंगी और वटवृक्ष के सात-सात घाट हैं। दायें-बायें महल के समान दो पुल हैं। मध्य का घाट पाट घाट के नाम से प्रसिद्ध है। पाट घाट से एक रास्ता निकल कर रंगमहल के मुख्य द्वार की सीढ़ियों तक चला गया है।

रंगभवन से उत्तर तरफ पुखराज पर्वत है, उसके मध्य स्तम्भ से यमुना जी प्रगट होकर साढ़े चार लाख कोश पूर्व की तरफ जाती हैं, वहाँ से मुड़कर पुनः नौ लाख कोश दक्षिण दिशा में बह कर साढ़े चार लाख कोश पश्चिम तरफ हो रंगमहल के दक्षिण दिशा में हौज कौसर तालाब में जा मिलती हैं। शमुना जी की गहराई अगम्य है। जल दर्पण के समान अति निर्मल (पारदर्शक) है। उसके किनारे लगे हुये सातों घाट के वनों के फूल यमुनाजी में झूल रहे हैं और उनका

प्रतिबिम्ब जल में पड़ता है जो जल की शोभा बढ़ाता है । यमुना जी के दोनों तरफ एक हीरे की पाल है, जो अनेक तरह के रत्नों से जुड़ी है और जल अनेक प्रकार के विकसित कमल पुष्पों से सुशोभित है । इसके अन्दर विभिन्न जाति के जलचर कलोल करते हैं । दोनों तरफ के पटों पर वन, मयूर, शुक, चकोर, कोयल, कपोत, सारस, तितर, लवा, पपीहा आदि अनेक जाति के मधुरभाषी पक्षियों के कलरव से गुंजित है तथा अनेक प्रकार के सुमन, सौरभ से सुवासित और भ्रमरों के स्वरों से गुंजित हो रहा है ।

रंगमहल

जिस रंगमहल में अपने अंगभूत अनन्त शक्ति स्वरूप सखियों सहित पूर्णब्रह्म परमात्मा आनंद शक्ति श्रीश्यामा जी महारानी के साथ नित्य नूतन क्रीड़ा विलास करते हैं, उसे मूल भवन, रंगभवन, श्री निजधाम, दिव्य ब्रह्मपुर इत्यादि अनेक नामों से सम्बोधन करते हैं । यह दो सौ एक पहल का अति विशाल गोल सदन है । इसकी दस भूमिकायें हैं । इसके पूर्व दिशा में सुदीर्घ द्वार है, जिसे मूल द्वार, राज द्वार, प्रेवश द्वार आदि नामों से पुकारते हैं । इसके सामने एक मनोहर विशाल चाँदनी चौक है, जिसमें उत्तर में लाल और दक्षिण में हरा वृक्ष आमने-सामने सुशोभित दो चबूतरों पर शोभायमान हैं ।

इस चांदनी चौक से एक सौ सीढ़ियाँ ऊपर चढ़ने पर मूल द्वार में प्रवेश होता है । नित्य प्रातःकाल जब श्रीराज-श्यामाजी सखियों के साथ पाँचवीं भूमिका के शयन गृह से

उठकर तीसरी भोम के छज्जे पर आ विराजते हैं, तब श्री परमधाम के पचीस पक्षों के सभी पशु-पक्षी इसी चौक में एकट्ठे होकर श्री राजश्यामाजी के दर्शन करते हैं और अपनी कलाओं को प्रदर्शित करके श्रीयुगल स्वरूप और सखियों को रिझाते हैं ।

श्री अक्षरब्रह्म भी नित्य प्रातःकाल के समय यहाँ पर पधारकर अक्षरातीत पूर्णब्रह्म श्री राजजी के दर्शन करते हैं ।

पहली भोम

चांदनी चौक से भोम पर ऊँचा एक चबूतरा है, जिस पर रंगमहल बना है । सामने मुख्य प्रवेश द्वार है । भीतरी भाग में चारों ओर से घेरकर छः छः हजार मंदिरों की दो हारें हैं । उसके अन्दर चौरस हवेलियों तथा गोल हवेलियों की बत्तीस हारें हैं । उन्हीं गोल मंदिरों की एक हवेली, जो प्रवेश द्वार के सामने है वह नगों के चौसठ थंभों की दो हारों से घिरा हुआ है । उसके चार दिशाओं में चार बड़े द्वार हैं । इस हवेली के मध्य मे एक चौसठ थंभ का कमर भर ऊँचा चबूतरा है, जिस पर मध्य में अनेक दिव्य रत्नों से जड़े हुये स्वर्ण सिंहासन पर श्री राजश्यामाजी (युगल स्वरूप) विराजमान हैं । उन्हें चारों ओर से घेरकर तीन पंक्तियों में बारह हजार ब्रह्मांगनाएँ बैठी हैं जिनमें परस्पर प्रेमालाप हो रहा है । इसी गोल हवेली को मूलमिलावा कहते हैं ।

हवेलियों की बत्तीस कतारों के बाद भी मध्य तक कई तरह के महल मंदिर, बाग बगीचे, फूहारे इत्यादि हैं । इसको पूर्णरूप से जानने के लिये परमधाम की 'बड़ी वृत्त' का

अवलोकन करना चाहिये और परमधाम पट (नक्शा) देखना चाहिये ।

दूसरी भोम

इस भोम में भी महल, मन्दिर आदि सब पहली भोम के समान हैं । केवल प्रवेश द्वार से दाहिनी तरफ चौरस सोलह हवेलियों की जगह अत्यन्त मनमोहक तथा भ्रमोत्पादक द्वादश सहस्त्र (बारह हजार) मन्दिरों की भुलवनी है । उनके स्तम्भ, द्वार, दिवाल, फर्श, छत आदि सभी वस्तु दर्पण के सदृश हैं । प्रत्येक मंदिर में प्रवेश करने से स्वरूप के सहस्त्रों प्रतिबिम्ब दिखाई देते हैं । यहाँ पर श्री राजश्यामा जी तथा सुन्दरसाथ नित्य भुलवनी की लीला करते हैं । इसी को भुलवनी या भ्रमिका कहते हैं ।

तीसरी भोम

मूल द्वार के ऊपर तीसरी भूमिका में दस मंदिर भर की जगह में पड़साल (छज्जा) है । जहाँ पर प्रातः से लेकर तीन प्रहर तक श्रीराज, श्यामाजी और सुन्दरसाथ अनेक प्रकार की लीला करते हैं । प्रथम प्रहर की समाप्ति तक चांदनी चौक में (पशुपक्षी) तथा अक्षरब्रह्म दर्शन करने को आते हैं, श्री राज यहाँ पर बैठकर सबका मुजरा लेते हैं और मध्याह्न के समय आरोग कर यहीं पर पौढ़ते हैं । यहाँ पर नित्य परस्पर प्रेम के वाद-विवाद की चर्चा भी होती रहती है । इसीलिए इसको संवाद भूमिका, भोगभूमिका अथवा मुक्ति-भूमिका आदि कहते हैं ।

चौथी भोम

यहाँ पर चौरस हवेली में नित्य ही प्रथम प्रहर रात्रि तक नृत्य-गान आदि लीलाएँ होती हैं । नवरंगबाई अपनी यूथपत्नियों सहित निरत करती हैं । इसको श्रृंगार भूमिका अथवा नृत्य-भूमिका भी कहा गया है ।

पाँचवीं भोम

यहाँ पर रंगमहल के मध्य में, प्रवाली रंग मंदिर में रात्रि के दूसरे प्रहर से चौथे प्रहर तक शयन लीला होती है । इसको आनंद भूमिका, प्रेमरस भूमिका एवं शयन भूमिका भी कहते हैं ।

छठी भोम

यहाँ पर मंदिरों की जगह में देहलाने हैं जहाँ सर्व प्रकार के सुखपाल रहते हैं । इसको शिविका भूमि भी कहते हैं ।

सातवीं भोम

यहाँ पर चित्र-विचित्र और अनगिनत हिंडोले लगे हैं । यहाँ आमने-सामने दो-दो हिंडोलों की ताली लगती है । यहाँ पर श्रीराज श्यामाजी सखियों सहित अपनी रुचि अनुरूप झूलने की लीला करते हैं । इसको दोलिका भूमि भी कहते हैं ।

आठवीं भोम

सातवीं भोम के अनुसार यहाँ भी हिंडोले लगे हैं । परन्तु

यहाँ पर चार-चार हिंडोलों की ताली पड़ती है, प्रत्येक हिंडोल में श्रीराज जी एवं सखियाँ बैठकर आमने-सामने चारों तरफ से ताली देकर झूलते हैं । झूलों में लगी सोने की सांकलों से झूलते समय अनेक तरह की झनकार आवाज निकलती है । तालियों की पड़ताल और सखियों के प्रेम शब्द के आवाज से सारी भूमिका गर्जना करती है ।

नवमीं भोम

यहाँ पर चारों ओर विशाल छज्जे हैं, जिन पर चारों दिशाओं में विविध प्रकार के सुन्दर सिंहासन तथा अनेक रंगों की कुर्सियाँ सुशोभित हैं, जिनमें बैठकर सुदूर सच्चिदानंदमयी अलौकिक दृश्यों का अवलोकन करते हैं । इसको दूरदर्शिका भूमि कहते हैं ।

दसमीं भोम

यह सम्पूर्ण रंगभवन की ऊपरी छत है । यहाँ पर भिन्न-भिन्न जाति के फूलों की अनेक बगीचियाँ हैं; जिनके बीच में कई चहबच्चे, नहरें तथा फूलों की कतारें शोभा दे रही हैं । मध्य भाग में कमर भर ऊँचा एक चबूतरा है, जिस पर श्रीराज, श्यामाजी का सिंहासन है और चारों ओर सखियों के बैठने के लिये कुर्सियाँ लगी हैं । पूर्णिमा के दिन, चन्द्रमा जब पूर्णरूप से खिला हुआ होता है, तब यहाँ आकर दो प्रहर रात्रि व्यतीत होने तक चाँदनी का सुख लेते हैं । यहाँ से चहुँ ओर पच्चीस पक्षों का दृश्य नजर आता है । दसवीं भोम के किनारे चारों ओर घेर कर दो सौ एक गुर्जों की गुमटियाँ हैं, प्रत्येक पर

लाल रंग की पताकाएँ लगी हैं ।

पच्चीस पक्ष के नाम इस प्रकार हैं-

1- श्री निजधाम
(नव भोम, दसवीं आकाशी सहित)

2- श्री यमुनाजी, सात घाट सहित (केल, लिबोई, अनार, अमृत, जाम्बू, नारंगी, वट)

3- हौज कौसर तालाब ।

4- कुञ्ज-निकुञ्ज वन ।

5- मानिक पहाड़ के महल ।

6- पुखराज पहाड़ के महल ।

7- वन की नहरें तथा जवेरों की नहरें ।

8- पश्चिम की चौगान ।

9- बड़ो वन (बड़ा वन, मधुवन, महावन, ताड़वन) आठ सागर (नूर, नीर, क्षीर, दधि, घृत, मधु, रस, सर्वरस) आठ सागरों के बीच की भूमिका में गगनचुम्बी महलातें ।

इस प्रकार पच्चीस पक्षों के नाम हैं, जिनका अपार विस्तार है जो शब्दातीत हैं, अनिर्वचनीय है। श्री प्राणनाथजी ने सुंदरसाथ का प्रेम बढ़ाने तथा चितवनी करवाने के लिये आवेश द्वारा इसका वर्णन कर उस बेसुमार को सुमार में ला दिया है । इसकी विशेष जानकारी इसका नक्शा देखकर प्राप्त की जा सकती है । प्रत्येक प्रेमी सुंदरसाथ को इसका ज्ञान अवश्य होना चाहिये ताकि नित्य निरंतर परमधाम की याद बनी रहे ।

रंगमहल की चाँदनी के ऊपर से पूर्व में श्री यमुनाजी के दोनों किनारों पर सात घाट हैं, उनके बाद कुन्ज निकुन्ज

वन, अक्षर धाम, जवेरों की नहरें, छोटी राँग, बड़ी राँग आदि सम्पूर्ण दृष्टगोचर होता है ।

दक्षिण की ओर वट-पीपल की चौकी, कुन्ज-निकुन्ज वन, हौज कौसर तालाब, चौबीस हाँस का महल, माणिक पहाड़ के महल, जवेरों तथा वनों की नहरें, छोटी रांग तथा बड़ी रांग दिखलाई देती हैं ।

पश्चिम में फूल बाग, नूर बाग, पाँच वृक्षों की पंक्तियाँ, अन्नवन, दूब दुलीचा, चौगान, जवेरों तथा वनों की नहरें, छोटी रांग तथा बड़ी रांग दिखाई देती हैं ।

इसी प्रकार उत्तर दिशा में लाल चबूतरा, बड़ावन, मधुवन, महावन, ताड़वन, पुखराज पर्वत, जवेरों और वनों की नहरें, छोटी रांग तथा बड़ी रांग सुशोभित हैं ।

आठ सागर तथा उनके बीच की भूमिका को बड़ी रांग कहते हैं, जो आठों दिशाओं में चारों ओर दुर्ग के समान है ।

अन्य चार दिशा- आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य व ईशान की सामग्री उपरोक्त चार दिशाओ में दिखाई देती है ।

अक्षरातीत पूर्णब्रह्म सच्चिदानंद अद्वैत स्वरूप श्री राजजी महाराज-

श्री राजजी महाराज अपनी आनंद स्वरूपा आह्लादिनी शक्ति श्री श्यामाजी महारानी तथा श्री श्यामाजी के अंगरूपा द्वादस सहस्त्र ब्रह्मांगनाओं के साथ नित्य-नूतन ब्रह्मानंद किशोर लीलाएँ करते हैं ।

यहाँ के यावत् पदार्थ लीला के लिये बने हैं तथा समस्त पदार्थ श्री राजजी के अंग के अशांश का विस्तार है । यह

पूर्णतम स्थान है, अणु से लेकर पर्वत तक, कीट से लेकर हाथी तक पृथ्वी से लेकर सभी पांचों तत्त्व, तमाम जड़-चेतन आत्मस्वरूप, चैतन्य और अविनाशी हैं, जो पूर्णब्रह्म के ही अंगभूत हैं । इसलिये इन सबका समष्टि स्वरूप एकमात्र श्री राजजी ही हैं ।

जिस प्रकार यह पिंड पच्चीस तत्त्वों का समूह है, उसी प्रकार पच्चीस पक्ष परमधाम का समूह रूप पूर्णब्रह्म परमात्मा श्रीराजजी ही हैं । अब इनका कोई भी कारण नहीं, कोई उपादान नहीं, बल्कि ये ही कारणों के कारण और सब उपादानों के उपादान हैं । ये सबसे पर हैं, इनसे पर कुछ भी नहीं है । सब दिशाओ में स्वयं धामधनी ही हैं । ये ही पूर्णात्पूर्ण और परिपूर्णतम परमात्मा हैं ।